

10/3
कामना

ख 3/1
[नाटक]

आम्नाय-ग्रन्थालय,

सरतर्निधि, फरौदी

वाराणसी-5

ग्रन्थालय

दी, वाराणसी-५

ख 3/1

प्रमोद शर्मा

कामना

(प्रतीकात्मक नाटक)

१४३॥

आज्ञाय-ग्रन्थालय,

परतनिधि, करौबी

वाराणसी-५

७८३३३२ ७८३३३२



प्रसाद प्रकाशन

प्रसाद मन्दिर, गोवर्द्धनसराय, वाराणसी

इस नाटक को अभिनय-प्रसारण-प्रदर्शन-अनुवाद तथा फिल्मीकरण आदि में व्यवहृत और प्रयुक्त करने अथवा इसके किसी अंश को उद्धृत करने के लिए इसके स्वत्वाधिकारी श्री रत्नशंकर प्रसाद की लिखित अनुमति अनिवार्यतः आवश्यक है ।

लेखक :

श्री जयशंकर 'प्रसाद' **आम्नाय-ग्रन्था-य,**

सम्पादक :

सरतनिधि, करौड़

श्री रत्नशंकर प्रसाद

वाराणसी-5

प्रकाशक :

प्रसाद प्रकाशन

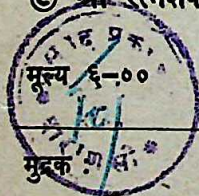
प्रसाद मन्दिर, गोवर्द्धन सराय, वाराणसी-१०

सर्वप्रथम संवत् १९८४ में प्रकाशित

प्रसाद-मन्दिर-संस्करण द्वितीय

आवृत्ति जून १९८७

© श्री रत्नशंकर प्रसाद

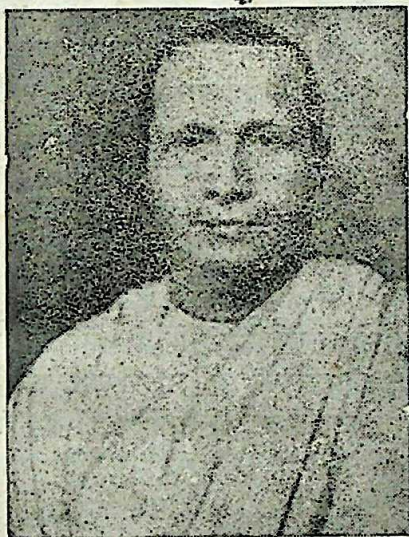


श्री माहेश्वरी प्रेस

भाट की गली, गोलघर, वाराणसी

परतर्निधि, करोंदी

पारावसी-5



प्रसाद-परिचय

आविर्भाव—माघ, शुक्ला दशमी विक्रमीय संवत् १९४६

तिरोभाव—कार्तिक शुक्ला, एकाशदी विक्रमीय संवत् १९९४

काशी के उत्तर-कीर्ति, श्री, विद्या और विनय से सम्पन्न भक्ति-प्रधान सुंघनी साहु के माहेश्वर-कुल में साहु देवीप्रसाद जी के कनिष्ठ आत्मज के रूप में श्री जयशङ्कर प्रसाद का जन्म हुआ था। उन्होंने स्थानीय क्वींस कालेज में छठवीं कक्षा तक अध्ययन किया। उसके बाद हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के परम्पराप्राप्त विद्वानों से घर पर ही काव्य और साहित्य की ठोस प्रारम्भिक शिक्षा पाई। बाल्यावस्था से ही कवियों और मनीषियों के आत्मीय सत्संग से उनकी नैसर्गिक प्रतिभा विकसित हो चली। किशोरावस्था में कविता उनके कण्ठ से

फूट चली और अपनी त्रयपुरुषी व्यावसायिक गद्दी—नारियल बाजार वाली सुंघनी साहु को दूकान पर अविदित भाव से उन्होंने चुपचाप अपनी काव्य-साधना को अग्रसर किया। वि० संवत् १९६३ में 'भारतेन्दु' में पहली बार उनकी कविता 'सावनपंचक' प्रकाशित हुई। इसी वर्ष उन्होंने उर्वशी चम्पू एवं प्रेम-राज्य के प्रणयन किये जिनका प्रकाशन संवत् १९६६ में हुआ। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में नये-नये उन्मेष लेकर 'इन्दु' के माध्यम से उनकी कविताएँ, कहानियाँ, नाटक और निबन्ध प्रकाशित होने लगे। अगस्त १९१० के 'इन्दु' (कला १ किरण २ भाद्र १९६७) में 'ग्राम' नाम की उनकी पहली कहानी प्रकाशित हुई। हिन्दी में कथा साहित्य के नये युग की स्थापना हुई। काव्य की नवीन शैली के सर्वश्रेष्ठ कवि ही नहीं उन्हें उसका प्रजापति कहा जा सकता है। हिन्दी के महिमा-मण्डित सर्वश्रेष्ठ नाटककार और मौलिक कहानीकार के रूप में साहित्य को उनकी देन अमर है। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनकी लेखनी के पारस ने हिन्दी-साहित्य के जिस विषय को जहाँ भी स्पर्श किया वह मिट्टी से सोना बन गया। भारतीय जीवन-दर्शन और चिन्तन की परम्परा में वे मानवता के उज्ज्वल भविष्य और लोकमंगल-मूलक आदर्शों के क्रांतदर्शी-स्वप्न-द्रष्टा और अग्रदूत थे। हिन्दी-साहित्य में प्रसादजी की लेखनी के द्वारा आस्था और आत्मवाद के जिस नये युग का प्रवर्तन हुआ छायावाद उसी की एक सुषमाभिव्यक्ति है। कविकुल-गुरु कालिदास और भवभूति दोनों को मिलाकर यदि व्यक्तित्व की कोई मूर्ति खड़ी की जा सके तो वह प्रसाद की उपमा बन सकती है। उनके ढाई उपन्यासों तथा खोजपूर्ण निबन्धों का हिन्दी जगत में बड़ा ऊँचा स्थान है जहाँ उनके चिन्तन की प्रचुर सामग्री मिलती है। उन्होंने हिन्दी जगत को जो मणिकांचनमय विचार दिये हैं उनका समुचित मूल्यांकन—आनेवाली शताब्दियों का दायित्व होगा।—अन्तेवासी

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
—ईशोपनिषत्

नैव राज्यं न राजासीन्न च दंडो न दांडिकः
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षंतिस्म परस्परम्
पालयमानास्तथाऽन्यौन्यं नरा धर्मेण भारत
दैत्यं परमुपाजग्मुस्तस्तान् मोह आविशत्
—महाभारत

पात्रियाँ



कामना

लीला

लालसा

करुणा

प्रमदा

वनलक्ष्मी

महत्वाकांक्षा

माता बालिका स्त्रियाँ आदि ।

पात्र



सन्तोष

विनोद

विलास

विवेक

शान्तिदेव

दंभ

दुर्वृत्त

क्रूर

वृद्ध, युवा, बालक, नागरिक, सैनिक, आगन्तुक,
द्वीपवासी, शिकारी, बन्दी आदि ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

प्रथम अंक

१

[फूलों का द्वीप, समुद्र का किनारा वृक्ष की छाया में लेटी हुई कामना]

कामना : ऊषा के अपांग में जागरण की लाली है। दक्षिण-पवन शुभ्र मेघमाला का अंचल हटाने लगा। पृथ्वी के प्रांगण में प्रभात टहल रहा है। विशाल जलराशि के शीतल अंक से लिपटकर आया हुआ पवन इस द्वीप के निवासियों को कोई दूसरा संदेश नहीं, केवल शांति का निरंतर संगीत सुनाया करता है। संतोष ! हृदय के समीप होने पर भी दूर है, सुन्दर है, केवल आलस के विश्राम का स्वप्न दिखाता है। परन्तु अकर्मण्य संतोष से मेरी पटेगी ? नहीं ! इस समुद्र में इतना हाहाकार क्यों है ? ऊँह, ये कोमल पत्ते तो बहुत शीघ्र तितर-बितर हो जाते हैं। (बिछे हुए पत्तों को बैठकर ठीक करती है) यह लो, इन डालों से छनकर आई हुई किरणें इस समय ठीक मेरी आँखों पर पड़ेंगी। अब दूसरा स्थान ठीक करूँ, बिछावन छाया में करूँ। (पत्तों को दूसरी ओर बटोरती है) घड़ी-भर चैन से बैठने में भी शंका है।

[दो-चार फूल वृक्ष से चू पड़ते हैं — व्यस्त होकर वृक्ष की ओर सरोष देखने लगती है। तीन स्त्रियों का कलसी लिये हुए प्रवेश]

पहली : क्यों बिगड़ रही हो कामना ?

दूसरी : किस पर क्रोध है कामना ?

तीसरी : कितनी देर से यहाँ हो कामना ?

कामना : (स्वगत) क्यों उत्तर दूँ ? सिर खाने के लिए यहाँ भी सब पहुंची !

[मुँह फिरा लेती है और बोलती नहीं]

पहली : क्यों कामना, क्या स्वस्थ नहीं हो ?

दूसरी : आहा ! बेचारी कुम्हला गयी है !

तीसरी : धूप में क्यों देर से बैठी है । चल—

कामना : मैं नहीं चाहती कि तुम लोग मुझे तंग करो । मैं अभी यहीं ठहरूँगी ।

दूसरी : दुलारी कामना, तू क्यों अप्रसन्न है ?

तीसरी : प्यारी कामना, तू क्यों नहीं घर चलती ?

पहली : काम जो करना होगा ! (सँभल कर) अच्छा कामना, जब तक तेरा मन ठीक नहीं है, तेरा काम मैं कर दिया करूँगी ।

दूसरी : तेरी कपास मैं ओट दिया करूँगी ।

तीसरी : सूत मैं कात दिया करूँगी ।

पहली : बुनना और पीने का जल भरना इत्यादि मैं कर दूँगी । तू अपना मन स्वस्थ कर चित को चैन दे । कामना, तेरी-सी लड़की तो इस द्वीप भर में कोई नहीं ।

कामना : क्या मैं रोगी हूँ जो तुम लोग ऐसा कह रही हो ? मैं किसी का उपकार नहीं चाहती । तुम सब जाओ, मैं थोड़ी देर में आती हूँ ।

[तीनों जाती हैं, कामना उठकर टहलती है]

कामना : ये मुरझाए हुए फूल, ऊँह—कलियाँ चुनो, उन्हें गूँथो और सजाओ, तब कहीं पहनो । लो, इन्हें रुठने में भी देर नहीं लगी । जब देखो, सिर झुका लेते हैं, सुगंध और रुचि के

बदले इनसे एक दबी हुई गर्म साँस निकलने लगती है ।

[हार तोड़कर फेंकती हुई और कुछ कहना चाहती है—
दो पुरुषों को आते देख चुप हो जाती है—वृक्ष की ओट में
चली जाती है—एक हल और दूसरा फावड़ा लिए आता है]

संतोष : भाई, आज धूप मालूम भी नहीं हुई ।

विनोद : हमें तो प्यास लग रही है । अभी तो दिन भी नहीं चढ़ा ।

संतोष : थोड़ी देर छाँह में बैठ जायँ - बातें करें ।

विनोद : काम तो हम लोगों का हो चुका, अब करना ही क्या है ?

संतोष : अभी देव-परिवार के लिए जो नयी भूमि तोड़ी जा रही है,
उसमें सहायता के लिए चलना होगा ।

विनोद : अपने खेतों में बहुत अच्छी उन्नति है । अब बहुत बच
रहेगा ! उन लोगों को आवश्यकता होगी, तो दूँगा ।

संतोष : अरे, साल में बहुत सार्वजनिक काम आ पड़ते हैं, तो उनके
लिए संग्रहालय में भी तो रखना चाहिये ।

विनोद : हाँ जी ठीक कहा ।

[समुद्र की ओर देखता है]

संतोष : क्यों जी, इसके उस पार क्या है ?

विनोद : यही नहीं समझ में आता कि वह पार है या नहीं ।

संतोष : ओह ! जहाँ तक देखता हूँ, अखंड जलराशि ।

विनोद : क्या कभी इसमें चलकर देखने की इच्छा होती है ?

संतोष : इच्छा तो होती है, पर लौटकर न आने के संदेह से साहस
नहीं होता । ये हरे-भरे खेत, छोटी-छोटी पहाड़ियों से ढुल-
कते - मचलते हुए झरने, फूलों से लदे हुए वृक्षों की पंक्ति,

भोली गउओं और उनके प्यारे बच्चों के झुंड; इस बीहड़ पागल और कुछ न समझने वाले उन्मत्त समुद्र में कहाँ मिलेंगे। ऐसी धवल धूप, ऐसी तारों से जगमगाती रात वहाँ होगी ?

विनोद : मुझे तो विश्वास है कि कदापि न होगी।

संतोष : तब जाने दो उसकी चर्चा व्यर्थ है। क्यों जी, आज उपासना में वह कामना नहीं दिखाई पड़ी।

विनोद : क्या तुम उससे ब्याह किया चाहते हो ?

संतोष : उसकी बातें, उसकी भाव-भंगिमा कुछ समझ में नहीं आती। मैं तो उससे अलग रहना चाहता हूँ।

विनोद : मेरी गृहस्थी तो ब्याह के बिना अधूरी जान पड़ती है। मैं तो लीला की सरलता पर प्रसन्न हूँ।

संतोष : तुम जानो। अच्छा होता यदि तुम उसी से ब्याह कर लेते ?

विनोद : और तुम !

संतोष : मैं संतुष्ट हूँ। मुझे ब्याह की आवश्यकता नहीं।

विनोद : अच्छी बात है। चलो, अब घर चलें।

[दोनों जाते हैं / कामना आती है]

कामना : हाँ, तुम हिचकते हो और मैं तुमसे घृणा (जोभ दबाती है) हूँ यह क्या ? इसके क्या अर्थ ? मैं क्या इस देश की नहीं हूँ। क्या मुझमें कोई दूसरी शक्ति है, जो मुझे इनसे भिन्न रखना चाहती है। कुछ मैं ही नहीं, ये लोग भी तो मुझको इसी दृष्टि से देखते हैं।

[लीला का प्रवेश]

लीला : बहन, क्या अभी घर न चलोगी ?

८/कामना

कामना : तू भी आ गयी ?

लीला : क्यों न आती ?

कामना : आती, पर मुझसे यह प्रश्न क्यों करती है ?

लीला : बहन, तू कैसी होती जा रही है। तेरा चरखा चुपचाप मन मारे बैठा है। तेरी कलसी खाली पड़ी है। तेरा बुना हुआ कपड़ा अधूरा पड़ा है। तेरी—

कामना : मेरा कुछ नहीं है, तू जा। मैं चुप रहना चाहती हूँ; मेरा हृदय रिक्त है। मैं अपूर्ण हूँ।

लीला : बहन, मैंने कुछ नहीं समझा।

कामना : तू कुछ न समझ, बस केवल चली जा।

[लीला सिर झुकाकर चली जाती है]

—मैं क्या चाहती हूँ ? जो कुछ प्राप्त है, इससे भी महान। वह चाहे कोई वस्तु हो। हृदय को कोई करो रहा है। कुछ आकांक्षा है; पर क्या है ? इसका किसी को विवरण नहीं देना चाहती। केवल वह पूर्ण हो और वहाँ तक जहाँ तक कि उसकी सीमा हो। बस —

[दूर पर वंशी की ध्वनि। कामना इधर-उधर चौंककर देखने लगती है। समुद्र में एक छोटी-सी नाव आती दिखाई पड़ती है। एक युवक बैठा डाँड़ चला रहा है। कामना आश्चर्य से देखती है। नाव तीर पर आकर लगती है]

—हैं, यह कौन ! मैं क्यों झुकी जा रही हूँ ? और सिर पर इसके क्या चमक रहा है जो इसे बड़ा प्रभावशाली बनाये है। इसका व्यक्तित्व ऐसा है कि मैं इसके सामने अपने को तुच्छ बना दूँ और अपने को समर्पित कर दूँ।

[कुछ सोचती है। युवक स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ वाँसुरी बजाता है। कामना उठती है और फूल इकट्ठे करती है। अकस्मात् उसके ऊपर बिखेर देती है। युवक पैर उठाता है कि नीचे उतरे। कामना उसका हाथ पकड़ कर नीचे ले आती है। युवक अपना स्वर्ण पट्ट खोलकर युवती कामना के सिर पर बाँधता है और दोनों एक दूसरे को देखते हैं]

[पट-परिवर्तन]

२

[वृक्ष-कुंज में एक परिवार बैठा बातचीत कर रहा है]

बालिका : माँ, कोई कहानी सुना।

बालिक : नहीं माँ, तू बहन से कह दे वह मेरे साथ दौड़े।

माता : थोड़ा-सा बुनना और है। मैं कहानी भी सुनाऊँगी, और तुझे दौड़ाऊँगी भी। आज तूने कम खाया; क्या भूख नहीं थी।

बालिका : माँ, आज यह दौड़ न सका, इसी से—

माता : तो तूने इसे क्यों नहीं खेल खिलाया ?

बालक : माँ, आज वहाँ लड़कों में कामना नहीं आयी। इससे बहुत कम खेलकूद हुआ।

[एक स्त्री का प्रवेश]

स्त्री : अजी कहाँ हो बहन ! कुछ सुना !

माता : क्यों बहन, क्या है ? आओ बैठो।

स्त्री : अरे आज तो एक नयी बात हुई है।

माता : क्या ?

स्त्री : समुद्र के उस पार से एक युवक आया है ।

माता : सपना तो नहीं देख रही है ।

स्त्री : क्या ! मैं अभी देखती आ रही हूँ ।

माता : कहाँ है—वह कहाँ बैठा है ?

स्त्री : कामना के घर में उसी के साथ तो वह द्वीप में आया है ।

माता : वह उसे क्यों ले आयी ? किसी ने रोका नहीं ? उपासना-मंदिर से क्या आदेश मिला कि वह नवीन मनुष्य इस देश में पैर रखने का अधिकारी हुआ, क्योंकि यह एक नयी घटना है ।

स्त्री : आजकल तो उपासना का नेतृत्व उसी कामना के हाथ में है, तब दूसरा कौन आदेश देगा ?

बालक : वह कैसा है माँ ?

बालिका : क्या हमीं लोगों के जैसा है ?

स्त्री : और तो सब कुछ हमीं लोगों का सा है । केवल एक चमकीली वस्तु उसके सिर पर थी । कामना कहती है, अब उसने वह मुझे दे दी है । उसे सिर में बाँधकर कामना बड़ी इठलाती हुई सबसे बातें कर रही है ।

[एक किशोरी बालिका का प्रवेश]

किशोरी : सब लोग चलो, आगंतुक के लिए एक घर की आवश्यकता है । कामना ने सहायता के लिए बुलाया है ।

[सब जाते हैं / लीला और संतोष का प्रवेश]

लीला : हाँ प्रियतम ! इस पूर्णिमा को हम लोग एक हो जायेंगे ।

संतोष : परन्तु तुम्हारी सखी तो—

लीला : अरे सुना है, उसने भी वरण किया ।

संतोष : किसे ? वह तो इससे अलग रहना चाहती है !

लीला : कोई समुद्र-पार से आया है ।

संतोष : हाँ, आने का समाचार तो मैंने भी सुना है, पर उस नवा-
गंतुक से क्या इस देश की कुमारी ब्याह करेगी ?

लीला : क्यों, क्या ऐसा नहीं हो सकता ?

संतोष : अभी तक तो नहीं सुना; क्या किसी पुरानी कहानी में तुमने
ऐसा सुना है ?

लीला : परन्तु कोई आया भी तो नहीं था ।

संतोष : यह तो ठीक नहीं है । सुना है, उसका नाम विलास है ।

लीला : ठीक तो नहीं है, पर होगा यही ।

संतोष : यदि विरोध हुआ, तो तुम क्या करोगी ?

लीला : मेरी सखी है । आज तक तो इस द्वीप में विरोध कभी नहीं
हुआ !

संतोष : तो मैं विचार करूँगा । तुम्हारे पथ पर मैं चल सकूँगा ?

लीला : (आश्चर्य से) क्या इसमें भी संदेह है ?

संतोष : हाँ लीला ।

लीला : नहीं-नहीं, ऐसा न कहो—

[दोनों जाते हैं / पट परिवर्तन]

३

[कुंज-वन में कामना के साथ बैठा हुआ विलास]

कामना : प्रिय, अब तो तुम हम लोगो की बातें अच्छी तरह समझने

लगे । जो लोग मिलने आते हैं, उनसे बातें भी कर लेते हो ।

विलास : हाँ अब तो कोई बाधा नहीं होती प्रिये ! तुम लोग कुछ गाती नहीं हो क्या ?

कामना : गाती क्यों नहीं हैं, पर तुम्हें हमारे गान अच्छे लगेंगे ?

विलास : क्यों नहीं, सुनूँ तो ।

[कामना गाती है और विलास बाँसुरी बजाता है]

सघन वन वल्लरियों के नीचे -

उषा औरसंध्या किरनों ने तार बीन के खींचे ।

हरे हुए वे गान जिन्हें मैंने आँसू से सींचे ।

स्फुट हो उठी मूक कविता फिर कितनों ने दृग मींचे ।

स्मृति-सागर में पलक-चुलुक से बनता नहीं उलीचे ।

मानस-तरी भरी करना-जल होती ऊपर-नीचे ।

विलास : कामना ! कामना ! तुम लोगों का ऐसा मधुर गान है ! मैंने तो ऐसा गान कभी नहीं सुना !

कामना : (आश्चर्य से) क्या ऐसा गान कहीं नहीं होता !

विलास : इस लोक में तो नहीं ।

कामना : तब तो बड़ी अच्छी बात हुई ।

विलास : क्या ?

कामना : मैं नित्य सुनाया करूँगी ।

विलास : क्यों प्रिये, तुम्हारे देश के लोग मुझसे अप्रसन्न तो नहीं है ?

क्या तुम-

कामना : इसमें अप्रसन्न होने की तो कोई बात नहीं है । यह तो इस द्वीप का नियम है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष स्वतन्त्रता से जीवन भर के लिए अपना साथी चुन ले ।

विलास : क्या तुम्हें किसी का डर नहीं है ?

कामना : (अल्हड़पन से) डर ! डर क्या है ?

विलास : क्या तुम्हारे ऊपर किसी किसी की आज्ञा नहीं है ?

कामना : हाँ है, नियमों की । वह तुम्हारे लिए टूट नहीं रहा है ।
और इस समय तो मैं ही इस द्वीप-भर की उपासना का
नेतृत्व कर रही हूँ । मेरे लिए कुछ विशेष स्वतंत्रता है ।

विलास : क्या ऐसा सदैव रहेगा ?

कामना : (चौंककर) क्या मेरे जीवनभर ? नहीं, ऐसा तो नहीं है
और न हो सकता है ।

विलास : (गंभीरता से) क्यों नहीं हो सकता ? मेरे देश में तो बराबर
होता है ।

कामना : (प्रसन्नता और घबराहट से) तो क्या मेरे लिए यहाँ भी वह
संभव है ?

विलास : उद्योग करने से होगा ।

कामना : चलो उस शिलाखंड पर अच्छी छाया है, वहीं बैठें ।

[हाथ पकड़ कर उठाती है / दोनों वहाँ जाकर बैठते हैं]

विलास : कामना, तुम लोगों की कोई कहानी हैं ।

कामना : है क्यों नहीं !

विलास : कुछ सुनाओ । इस द्वीप की कथा मैं सुनना चाहता हूँ ।

कामना : (आकाश की ओर दिखाकर) हम लोग बड़ी दूर से आये हैं ।
जब विलोड़ित जलराशि स्थिर होने पर यह द्वीप ऊपर
आया, उसी समय हमलोग शीतल तारिकाओं की किरणों
की डोरी के सहारे नीचे उतारे गये ।^१ इस द्वीप में अब तक
तारा की ही संतान बसती हैं ।

१. अवलोक्य : दीघनिकाय अग्न्यसुत्त

विलास : क्यों यह जाति उतारी गयी ?

कामना : वहाँ चुपचाप बैठने से यह संतुष्ट नहीं थी। पिता ने खेल के लिए यहाँ भेज दिया। इन तारा की संतानों का खेल एक बड़े छिद्र से पिता देखा करते है।

विलास : कौन-सा छिद्र ?

कामना : वही जिससे दिन हो जाता है। पिता का असीम प्रकाश उससे दिखायी पड़ता है; क्योंकि वह केवल आलोक है ! वही रात को झँझरीदार परदा खींच लेता है, तब कहीं-कहीं से तारे चमकते हैं। यह सब उसी लोक का प्रकाश है।

विलास : अच्छा, तो वहाँ जाते कैसे हैं ?

कामना : पिता की आज्ञा से, कभी छोटी, कभी बड़ी एक राह खुलती है, और किसी दिव बिल्कुल नहीं, उसे चंद्रमा कहते हैं। अपने शीतल पथ से थकी हुई तारा की संतान अपने खेल समाप्त कर उसी से चली जाती हैं।

विलास : (आश्चर्य से) भला तारों की राह से क्यों भेजे जाते हैं ?

कामना : यह खिलवाड़ी और मचलनेवाली संतान थका देने के लिए भेजी जाती है। हमारे अत्यंत प्राचीन आदेशों में तो यही मिलता है, ऐसा ही हमलोग जानते हैं।

[दूर एक बड़ा सुरीला पक्षी बोलता है। कामना घुटने टेक कर सिर झुका लेती और चुपचाप उसका शब्द सुनती है]

विलास : कामना ! क्या कर रही हो ?

कामना : (उठकर) पिता का सन्देश सुन रही थी। मैं उपासना-गृह में जाती हूँ। क्योंकि कोई नवीन घटना होने वाली है। तुम ठहरकर आना। (जाती है)

विलास : आश्चर्य ! कैसी प्रकृति से मिलीं हुई यह जाति है । महत्व और आकांक्षा का अभाव और संघर्ष का लेश भी नहीं है । जैसे शैल-निवासिनी सरिता पथ के विषम ढोकों को, विघ्न-बाधाओं को भी अपने सम और सरल प्रवाह तथा तरल गति से ढँकती हुई बहती रहती है, उसी प्रकार यह जाति, जीवन की बक्र रेखाओं को सीधी करती हुई, अस्तित्व का उपभोग हँसती हुई कर लेती है । परंतु ऐसे— (चुप होकर सोचने लगता है) उहं, करना होगा । ऐसी सीधी जाति पर भी शासन न किया, तो पुरुषार्थ ही क्या ? इनमें प्रभाव फैलाकर अपने व्यक्तिगत महत्ता के प्रलोभन वाले विचारों का प्रचार करना होगा । जान पड़ता है कि किसी गुप्त संकेत पर ये लोग प्राचीन प्रथा के अनुसार, केवल उपासना के लिए किसी के नेतृत्व का अनुसरण करते हैं । संभवतः जब तक लोग उसकी कोई अवोग्यता न देख लेंगे, तब तक उसी को नेता मानते रहेंगे । भाग्य से आज-कल कामना ही है; परंतु मेरे कारण शीघ्र इसको अपने पद से हटना होगा । तो जब तक कामना इस पद पर है, उसी बीच में अपना काम कर लेना होगा ।

[दूर पर एक स्त्री की छाया देख पड़ती है]

छाया : मूर्ख ! अपने देश की दरिद्रता से विताड़ित और अपने कुकर्मों से निर्वासित साहसी ! तू राजा बनना चाहता है ? तो स्मरण रख, तुझे इस जाति को अपराधी बनाना होगा । जो जाति अपराध और पापों से पतित नहीं होती, वह विदेशी तो क्या; किसी अपने सजातीय शासक की भी आज्ञाओं का बोझ वहन नहीं करती । और समझ ले कि

बिना स्वर्ण और मदिरा का प्रचार किये तू इस पवित्र और भोली भाली जाति को पतित नहीं बना सकता ।

विलास : कौन, मेरी महत्त्वाकांक्षा ! तुझे धन्यवाद । ठीक समय पर पहुँची । (विलास जाता है, छाया अदृश्य हो जाती है)

[एक ओर से कामना दूसरी ओर से विनोद का प्रवेश]

कामना : विनोद ! तुम लीला से मिले थे ? वह तुम्हें एक दिन खोज रही थी ।

विनोद : संतोष के कारण मैं उससे नहीं मिलता । आज उसका ब्याह होने वाला था न !

कामना : वह संतोष से ब्याह न करेगी ! चलो, फूलों का मुकुट पहनाकर तुम्हें ले चलूँ ।

विनोद : मैं ?

कामना : हाँ !

[पट-परिवर्तन]

४

[लीला का कुटीर, फूल-मंडप में लीला]

लीला : आज मिलन-रात्रि है । आज दो अधूरे मिलेंगे, एक पूरा होगा । मधुर जीवन-स्रोत को संतोष की शीतल छाया में बहा ले जाना आज से हमारा कर्तव्य होना चाहिए । परंतु मुझे वैसी आशा नहीं । मेरा हृदय व्याकुल है, चंचल है, लालायित है, मेरा सब कुछ अपूर्ण है केवल उसी चमकीली वस्तु के लिए । मेरी सखी कामना ! आह, मुझे भी एक वैसी ही मिलनी चाहिए ।

[वन-लक्ष्मी का प्रवेश]

लीला : तुम कौन ?

वन-लक्ष्मी : मैं वन-लक्ष्मी हूँ ।

लीला : क्यों आयी हो ?

वन-लक्ष्मी : इस द्वीप के निवासियों में जब ब्याह होता है, तब मैं आशीर्वाद देने आती हूँ । परंतु किसी के सामने नहीं ।

लीला : फिर मेरे लिए ऐसी विशेषता क्यों ?

वन-लक्ष्मी : अभिशाप देने के लिए ।

लीला : हम 'तारा की संतान' हैं । हमें किसी के अभिशाप से क्या संबंध ! और मैंने किया ही क्या है जो तुम अभिशाप कहकर चिल्लाती हो । इस द्वीप में आज तक किसी को अभिशाप नहीं मिला, तो मुझे ही क्यों मिले ?

वन-लक्ष्मी : मैंने भूल की । अभिशाप तो तुम स्वयं इस द्वीप को दे रही हो ।

लीला : जो बात मैं समझती नहीं, उसी के लिए क्यों...मुझे....।

वन-लक्ष्मी : जो वस्तु कामना को अकस्मात् मिली है, उसी के लिए तुम ईर्ष्या कर रही हो, वैसी ही तुम भी चाहती हो ।

लीला : तो ऐसा चाहना क्या कोई अभिशाप, ईर्ष्या या और क्या-क्या तुम कह रही हो, वही है ?

वन-लक्ष्मी : आज तक इस द्वीप के लोग 'यथा-लाभ संतुष्ट' रहते थे, कोई किसी का मत्सर नहीं करता था । परंतु इस विष का...

लीला : बस करो, मैं तुम्हारे अभिशाप, ईर्ष्या और विष को नहीं समझ सकी ! यदि मैं किसी अच्छी वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा करूँ तो उसकी गिनती तुम अपने इन्हीं शब्दों में

करोगी, जिन्हें किसी ने सुना नहीं था। अभिशाप, मत्सर, ईर्ष्या और विष !

वन-लक्ष्मी : अच्छी वस्तु तो उतनी ही है, जितनी की स्वाभाविक आवश्यकता है। तुम क्यों व्यर्थ अभावों की सृष्टि करके जीवन को जटिल बना रही हो ? जिस प्रकार ज्वालामुखियाँ पृथ्वी के नीचे दबा रक्खी गयी हैं, और शीतल स्रोत पृथ्वी के वक्ष-स्थल पर बहा दिये गये हैं, उसी प्रकार ये सब अभाव 'तारा की संतानों' के कल्याण के लिए गाड़ दिये गये हैं। यह ज्वाला सोने के रूप में सब के हाथों में खेलती और मदिरा के शीतल आवरण से कलेजे में उतर आती है।

लीला : मदिरा ! क्या कहा ?

वन-लक्ष्मी : हाँ-हाँ, मदिरा, जो तुम्हारे उस पात्र में रक्खी है !

[पात्र की ओर संकेत करती है]

लीला : क्या इसे कहती हो ? (पात्र उठा लेती है) इसे तो सखी कामना ने ब्याह के उपलक्ष में भेजा है। और सोना क्या ?

वन-लक्ष्मी : वही, जिसके लिए लालायित हो।

लीला : तुम वन-लक्ष्मी हो, तभी.....

वन-लक्ष्मी : क्या मैं भी उस चमकीली वस्तु के लिए शीतल हृदय में जलन उत्पन्न करूँ ?

लीला : जलन तो है ही। तुम्हारे पास नहीं है, इसीलिए मुझे भी उससे वंचित करना चाहती हो। कामना के पास है, और मैं उसे पाने का प्रयास कर रही हूँ। इसे ही तो तुमने कहा था मत्सर ! और मैं पा जाऊँगी उद्योग करके, इसलिए तुम निषेध करती हो। क्या यह मत्सर तुम्हारे शीतल हृदय की जलन नहीं है ?

वन-लक्ष्मी : लीला ! लीला ! सावधान हो, हमारे द्वीप में लोहे का उपयोग सृष्टि की रक्षा के लिए है। उसे संहार के लिए मत बना। जो वस्तु खेती और हिल पशुओं से सरल जीवों की रक्षा का साधन है, उसे नरक के हाथ, हिंसा की उंगलियाँ न बना दे। कामना को उस विदेशी युवक के साथ महार्णव में विसर्जन कर दे। उसे दूसरे देश में चले जाने के लिए भी कह दे, परंतु....

लीला : वन-लक्ष्मी हो ? क्या तुम ऐसा निष्ठुर निर्देश करती हो कि मैं अपनी सखी को....।

वन-लक्ष्मी : हाँ ! हाँ ! उस अपनी सखी से दूर रह। केवल तू ही उस अग्नि का ईंधन बनकर विनाश न फैला। महार्णव से मिलती हुई तरंगिणी के जल में चुटकी लेता हुआ शीतल और सुगंधित पवन इस देश में बहने दे। इस देश के थके कृषकों को विनोदपूर्ण बनाने के लिए, प्रत्येक पथिक पर, कल्याण के सदृश, यहाँ के वृक्षों को फूल बरसाने दे। आग, लोहे और रक्त की वर्षा की प्रस्तावना न कर। इस विश्वंभरा को, इस जननी को—धातु निकाल कर खोखली और निर्बल बनाने का समारंभ होने से रोक। मेरी प्यारी लीला, मान जा ! कहे जाती हूँ—जिस दिन तूने उस चमकीली वस्तु के लिए हाथ पसारा, उसी दिन इस देश की दुर्दशा का प्रारंभ होगा।

[चली जाती है]

लीला : (कुछ देर बाद) आश्चर्य ! आज तक तो वन-लक्ष्मी किसी से नहीं मिली थी। अब मैं क्या करूँ ? चलकर कामना से कहूँ; या उपासनागृह में ही समके सामने कहूँ (सोचती

है) नहीं, अलग ही कहना ठीक होगा । तो चलूँ (रुककर)
यह लो कामना तो स्वयं आ रही है ।

[कामना का प्रवेश]

कामना : लीला, सखी, तू कैसी हो रही है ?

लीला : मैं तो तेरे ही पास आ रही थी । बड़े आश्चर्य की बात है ।

कामना : आश्चर्य की कई बातें आज-कल इस द्वीप में हो रही हैं ।
पर उनसे क्या ? पहले मेरी ही बात सुन ले । मैं विलास
के साथ बातें कर रही थी कि पक्षियों का संकेत हुआ । मैं
उपासनागृह में गयी । मुझे नियमानुसार यह विदित हुआ
कि इस देश पर कोई आपत्ति शीघ्र आना चाहती है । परन्तु
मैं तनिक भी विचलित न हुई । मैं तो तेरे ब्याह का शृङ्गार
करने आयी हूँ । तू कह.....

लीला : आज वन-लक्ष्मी मुझसे न जाने कहाँ-कहाँ की कैसी-कैसी
बातें कह गयी ।

कामना : वन-लक्ष्मी ! भला, वह तेरे सामने आयी ! आश्चर्य ! क्या
कहा ?

लीला : कहा कि कामना के हाथों से देश का विनाश होगा । तू
उसका साथ न दे, और उस चमकीली वस्तु की चाह कभी
न करना जैसा कामना के पास है, क्योंकि वह ज्वाला है ।
और भी न जाने क्या-क्या कह गयी ।

कामना : हूँ । तूने क्या कहा ?

लीला : मैंने कहा कि वह मेरी सखी है, मैं उसे न छोड़ूँगी ।
(आलिंगन करती है)

कामना : प्यारी लीला, वह मैं तुझे अवश्य दिलाऊँगी, अधीर न हो ।
तू जैसे भ्रांत हो गयी है । वह पेया, जो मैंने भेजी है, कहाँ
है ? थोड़ी-उसमें से पी ले ।

लीला : ओ—उसे तो और भी मना किया है ।

कामना : (हँसती हुई पात्र उठाकर) अरे ले भी, अभी थकावट होती है ।

(लीला और कामना पीती हैं)

लीला : बहन, इसके पीते ही तो मन दूसरा हुआ जाता है ।

कामना : बड़ी अच्छी वस्तु है ।

लीला : ऐसी पेया तो नहीं पी थी । यह कहाँ से ले आयी ?

मामना : एक दिन मैं और विलास, दोनों, नदी के किनारे से बहुत दूर निकल गये । फिर वहाँ प्यास लगी; परन्तु नदी तल लौटने में विलंब होता । एक तरबूज आधा पड़ा था, उसी सूर्य की गरमी से तपा हुआ उसी का रस था । हम दोनों आधा-आधा पी लिया । बड़ा आनंद आया । अब उसी रीति से बनाया करती हूँ ।

लीला : (मद-विह्वल होती है) कामना, तू बन-लक्ष्मी है । वह जल आयी थी, मुझे भुलाने आयी थी । तू क्या है, सुगंध की लहर है । चाँदनी की शीतल चादर है । अः (उठने चाहती है) ।

कामना : (लीला को बिठाकर) तू बैठ, आज मिलन-रात्रि है विनोद के आने का समय हो गया ।

लीला : विनोद ! कौन ! नहीं कामना ! संतोष ! मेरा प्यार संतोष ! तुमने तो ब्याह न करने का निश्चय किया है ?

कामना : कैसी है तू ! वह मेरा निर्वाचित है । मैं चाहे ब्याह करूँ नहीं परन्तु वह तो सुरक्षित रहेगा—समझी लीला ! तूने लिए तो विनोद ही उपयुक्त है । संतोष मुझसे डरता है तो मैं भी उससे सब को डराऊँगी—विनोद को मैं बुला आऊँगी ।

हूँ। वह तेरा परम अनुरक्त है। [लीला आवाक् होकर देखती है फूलों के मुकुट से सजा हुआ विनोद आता है]

कामना : स्वागत !

लीला : विराजिये।

[सब बैठ जाते हैं कामना दो फूल के हार दोनों को पहनाती और पात्र लेकर दोनों को एक में पिलाती है, पीछे खड़ी होकर दोनों के सिर पर हाथ रखती है। तीनों के मुख पर तीव्र आलोक]

कामना : अखंड मिलन हो !

विनोद : उपासना-गृह में भी तो चलना होगा।

लीला : यह तो नियम है।

कामना : थोड़ी और पी लो, तो चलें। वहाँ सब लोग एकत्र रहेंगे। परंतु देखो, जो मैं कहूँ, वहाँ वही करना।

लीला : }
विनोद : } वही होगा।

[दोनों पात्र खाली करके जाते हैं]

कामना : मेरे भीतर का बाँकपन सीधा हो गया है। मेरा गर्व उसके पैरों में लोटने लगा। वह अतिथि होकर आया, आज स्वामी है। व्योम-शैल से गिरती हुई चंद्रिका की धारा आकाश और पाताल एक कर रही है। आनंद का स्रोत बहने लगा है। इस प्रपात के स्वच्छ कणों में कुहासे के समान सृष्टि में अंधकार मिश्रित आलोक फैल गया है। अंतःकरण के प्रत्येक कोने से असंतोष-पूर्ण तृप्ति की स्वीकार-सूचनाएँ मिल रही हैं। विलास ! तुम्हारे दर्शन ने सुख भोगने के नये-नये आविष्कारों से मस्तिष्क भर दिया

है। क्लान्ति और श्रान्ति मिलने के लिए जैसे सकल इन्द्रिय
परिश्रम करने लगी हैं—विलास !

(गाती है)

घिरे सघन घन नींद न आयी, निर्दय भी न अभी आया !
चपला ने इस अंधकार में, क्यों आलोक न दिखलाया ?
बरस चुकीं रस बूँद सरस हो, फिर भी यह मन कुम्हलाया ?
उमड़ चले आँखों के झरने, हृदय न शीतल हो पाया !
—चलूँ उपासना-गृह में—(जाती है)

[पट-परिवर्त्तन]

५

[उपासना-गृह में—सामने धूनी में जलती हुई अग्नि और
बीच में कामना स्वर्ण-पट्ट बाँधे, दोनों ओर द्वीप के नागरिक
सबसे पीछे विलास]

कामना : पिता ! हम सब तेरी संतान हैं। (सब वही कहते हैं)

कामना : हमारी परस्पर की भिन्नता के अवकाश को तू पूर्ण बना
रख, जिसमें हम सब एक हो रहें।

सब : हम सब एक हो रहें।

कामना : हमारे ज्ञान को इतना विस्तार न दे कि हम सब दूर-दूर हो
जायें। हम सब समीप रहें।

सब : हम सब समीप रहें।

कामना : हमारे विचारों को इतना संकुचित न कर दे कि हम अपने
ही में सब कुछ समझ लें। सब में तेरी सत्ता का अनुभव
हो।

सब : सब में तेरी सत्ता का अनुभव हो (घुटने टेकते हैं)

कामना : (उठकर) हम लोगों में आज एक नवीन मनुष्य है । वह आप लोगों को पिता का एक संदेश सुनावेगा !

एक वृद्ध : पवित्र पक्षियों के संदेश क्या अब बंद होंगे !

दूसरा : क्या मनुष्य से हम लोग संदेश सुनेंगे !

तीसरा : कभी ऐसा नहीं हुआ ।

विलास : शांत होकर सुनिये । पवित्र उपासना-गृह में मन को एकाग्र करके, विनम्र होकर, संदेश सुनिये । विरोध न कीजिये ।

हला वृद्ध : इस उपद्रव का अर्थ ? विदेशी युवक, तुम यहाँ क्या किया चाहते हो ? विरोध क्या ?

विनोद : सुनने में बुराई क्या है ?

लीला : हमारे ब्याह की उपासना यों उपद्रव में न समाप्त होनी चाहिए । आप लोग सुनते क्यों नहीं ?

कामना : मैं आज्ञा देती हूँ कि अभी उपासना पूर्ण नहीं हुई; इसलिए सब लोग संदेश को सावधान होकर सुनें ।

चार वृद्ध : इस उन्मत्त कथा का कहीं अंत होगा ? कामना ! आज तुम्हें क्या हुआ है ? तुम केवल उपासना का नेतृत्व कर रही हो; आज्ञा कैसी ? वह क्यों मानी जाय ?

त्री-पुरुष : हम लोगों को यहाँ से चलना चाहिये और कोई दूसरा व्यक्ति कल से उपासना का नेता होगा ।

विलास : अनर्थ न करो, ईश्वर का कोप होगा ।

[विलास के संकेत पर कामना अग्नि में राल डालती है]

विलास : ईश्वर है, और वह सबके कर्म देखता है । अच्छे कार्यों का पारितोषिक और अपराधों का दण्ड देता है । वह न्याय करता है; अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा !

बिवेक : परन्तु युवक, हम लोग आज तक उसे पिता समझते थे और हम लोग कोई अपराध नहीं करते। करते हैं केवल खेल खेल का कोई दंड नहीं। यह न्याय और अन्याय क्या अपराध और अच्छे कर्म क्या हैं, हम लोग नहीं जानते हम खेलते हैं, और खेल में एक दूसरे के सहायक हैं, इसमें न्याय का कोई कार्य नहीं। पिता अपने बच्चों का खेल देखता है, फिर कोप क्यों ?

विलास : तुम्हारी ज्ञान-सीमा संकुचित होने के कारण यह भ्रम है। तुम लोग पुण्य भी करते हो। और पाप भी।

बिवेक : पुण्य क्या ?

विलास : दूसरों की सहायता करना इत्यादि। पाप है दूसरों को कष्ट देना, जो निषिद्ध है।

बिवेक : परन्तु निषेध तो हमारे यहाँ कोई वस्तु नहीं है। हम वही करते हैं, जो जानते हैं, और जो जानते हैं, वह सब हमारे लिए अच्छी बात है। केवल निषेध का घोर नाद करके तुम पाप क्यों प्रचारित कर रहे हो ? वह हमारे लिए अज्ञात बात है। तुम ज्ञान को अपने लिए सुरक्षित रखो। यहाँ...

कामना : दिव्य पुरुष से केवल शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

विनोद : हम आपके आज्ञाकारी हैं। आपके नेतृत्व-काल में अपूर्व वस्तु देखने में आयी, और कभी न सुनी हुई बातें जानी गयीं। आप धन्य हैं !

एक : हम लोग भी स्वीकार ही करेंगे। तो अब सब लोग जायें ?

विनोद : व्याह का उपहार ग्रहण कर लीजिये।

कामना : वह ईश्वर की प्रसन्नता है। आप लोगों को उसे लेकर जाना चाहिये।

(विनोद और लीला सब को मदिरा पिलाते हैं)

कामना : है न यह उसकी प्रसन्नता ?

दो-चार : अवश्य, यह तो बड़ी अच्छी पेया है ।

(सब मोह में शिथिल होते हैं)

—ईश्वर से डरना चाहिए, सदैव सत्कर्म....।

एक : नहीं तो वह इसी ज्वाला के समान अपने क्रोध को धधका देगा ।

दूसरा : और हम लोगों को दंड देगा ।

विवेक : परंतु प्यारे बच्चों, वह पिता स्नेह करता है, यह हम लोग कैसे भूल जायँ, और उससे डरने लगें ?

कामना : तुम्हें प्रमाण मिलेगा कि हम लोगों में अपराध है; उन्हीं अपराधों से हम लोग रोगी होते और उसके बाद इस द्वीप से निकाल दिये जाते हैं । उन अपराधों को हमें धीरे-धीरे छोड़ना होगा ।

विवेक : तो फिर सब कर्म केवल अपराध ही हों जाएँगे—

और सब : हम लोग उन अपराधों को जानेंगे और त्याग करेंगे । रोग और निकाले जाने से बचेंगे ।

विलास : सब का कल्याण होगा ।

[एक दूसरे से आलिङ्गन करते हुए मद्यपों की-सी प्रसन्नता प्रकट करते हुए जाते हैं]

विवेक : परिवर्तन ! वर्षा से धुले हुए आकाश की स्वच्छ चंद्रिका, तमिस्रा से कुहू में बदल जायगी । बालकों के से शुभ्र हृदय छल की मेघमाला से ढंक जायँगे । (सोचता है)

पिता ! पिता ! हम डरेंगे तुमसे काँपेंगे ? क्यों ? हम अपराधी हैं । नहीं-नहीं, यह क्या अच्छी बात है । यह क्या है ? अब खेल समाप्त होने पर तुम्हारी गोद में शीतल पथ से हम न जाने पावेंगे । तुम डंड दोगे । नहीं, नहीं—ओह ! न्याय करोगे ? भयानक न्याय—क्योंकि हम अपराध करेंगे, और तुम दंड दोगे—ओह ! उसने कहा कि तुम निर्जीव बनकर इस द्वीप से निकाल दिये जाते हो, यही प्रमाण है कि तुम अपराधी हो । क्या हम अपराधी हैं ? अपराध क्या पदार्थ है ? क्षुद्र स्वार्थों से बने हुए कुछ नियमों का भंग करना अपराध होगा । यही न ? परन्तु हमारे पास तो कोई नियम ऐसे नहीं थे, जो कभी तोड़े जाते रहे हों । फिर क्यों यह अपराध हम पर लादा जा रहा है ? पिता ! प्रेममय पिता ! हमारे इस खेल में भी यह कठोरता, यह दंड का अभिशाप लगा दिया गया । हमारे फूलों के द्वीप में किस निर्दय ने कांटे बिखेर दिये ? किसने हमारा प्रभात का स्वप्न भंग किया ? स्वप्न—आ ! कुदृश्यों से थकी हुई आँखों में चला आ—विश्राम ! आ ! मुझे शीतल अक में लें !—ऊँह ! सो जाऊँ (सोने की चेष्टा करता है । स्वप्न में—स्वर्ग और नरक का दृश्य देखता हुआ अर्ध-निद्रित अवस्था में उठ खड़ा होता है)—मैं क्या-क्या कह गया । ये सब अभूत-पूर्व बातें कहाँ से हमारे हृदय में उठ रही हैं । परन्तु नहीं—यह तो प्रत्यक्ष है, दिखलाई पड़ रहा है कि ज्वाला और उसके पहले विष से मिला हुआ धुआँ फैलने लगा है । जलाने वाली अमृत होकर सुख भोग करने की इच्छा, इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कल्पना, इसे नरक बनाकर छोड़ेगी । हैं ! नरक और स्वर्ग ! कहाँ है ? ये क्यों मेरे हृदय में घुसे पड़े हैं ? काल्पनिक अत्यन्त उत्तमता, सुख-

भोग की अनंत कामना, स्वर्गीय इंद्र-धनुष बनकर सामने आ गयी है, जिसने वास्तविक जीवन के लिये इस पृथ्वी की दबी हुई ज्वालामुखियों का मुख खोल दिया है। हमारे फूलों के द्वीप के बच्चो—रोओगे इन कोमल फूलों के लिए, इन शीतल झरनों के लिए। पिता के दुलारे पुत्रो ! तुम अपराधी के समान बेंत-से काँपोगे। तुम गोद में नहीं जाने पाओगे। हा ! मैं क्या करूँ—कहाँ जाऊँ ?

(बड़बड़ाता हुआ जाता है। पट-परिवर्त्तन)

६

[कामना का नवीन मंदिर—कामना और विलास]

विलास : बहुत-से लोग पेया माँगते हैं कामना !

कामना : तो कैसे बनेगी ?

विलास : लीला स्वर्ण-पट्ट के लिए अत्यन्त उत्सुक है।

कामना : उसे तो देना ही होगा।

विलास : स्वर्ण तो मैंने एकत्र कर लिया है, अब उसे बनाना है।

कामना : फिर शीघ्रता करो।

विलास : जब तक तुम रानी नहीं हो जाती, तब तक मैं दूसरे को स्वर्णपट्ट नहीं पहनाऊँगा। केवल उपासना में प्रधान बनने से काम न चलेगा। परन्तु रानी बनने में अभी देर है, क्योंकि अपराध अभी प्रकट नहीं है। उसका बीज हम सब के हृदय में है।

कामना : फिर क्या होना चाहिये ?

विलास : आज सब को पिलाऊँगा। कुछ स्त्रियाँ भी रहेंगी न ?

कामना : क्यों नहीं ।

विलास : कितनी देर में सब एकत्र होंगे ?

कामना : आते ही होंगे । मुझे तो दिखलाओ, तुमने क्या बनाया है, और कैसे बनाया ?

विलास : देखो, परंतु किसी से कहना मत ।

[कामना आश्चर्य से देखती है । पर्दा हटाकर शराब को भट्टी और सुनार की धौंकनी दिखलाता है । गलाया हुआ बहुत-सा सोना रक्खा है । मंजूषा में से एक कंकण निकाल कर कामना को दिखाता है]

लीला : (सहसा प्रवेश करके) सब लोग आ रहे हैं ।

[विलास सब बंद कर लेता है लीला की ओर क्रोध से देखता है । लीला संकुचित हो जाती है]

विलास : जब कह दिया गया कि तुम्हें भी मिलेगा, तब इतनी उतावली क्यों है ?

[विनोद भी आ जाता है]

कामना : विनोद और लीला हमारे अभिन्न हैं प्रिय विलास !

विलास : ईश्वर का यह ऐश्वर्य है, उसका अंग है । जब उसकी इच्छा होगी, तभी मिलेगा । जल्दी का काम नहीं । विनोद तुम्हें भी इसकी...

विनोद : मैंने भी बहुत-सी रेत इकट्ठी की है, परंतु बना न सका— मुझे नहीं, लीला को चाहिये ।

विलास : (आश्चर्य और क्रोध प्रकट करते हुए) अच्छा, प्रतिज्ञा करो कि कामना जो कहेगी, वही तुम लोग करोगे, आदमी का रहस्य किसी से न कहोगे ।

विनोद : }
लीला : } हम दोनों दास हैं—किसी से न कहेंगे ।

कामना : क्या कहा !

दोनों : दास हैं—आपके दास हैं ।

कामना : नहीं, नहीं, तुम इतने दीन होकर इस ज्वाला की भीख मत लो । इस दीप के निवासी....

विलास : ठहरो कामना, (विनोद से) तो तुम अपनी बात पर दृढ़ हो ? झूठ तो नहीं बोलते ?

लीला : झूठ क्या ?

विलास : यही कि जो कहते हो, उसे फिर न कर सको ।

कामना : ऐसा तो हम लोग कभी नहीं करते—क्यों विनोद !

विलास : मैं तुमसे नहीं पूछ रहा हूँ कामना ।

विनोद : हाँ-हाँ वही होगा ।

[विलास एक छोटा-सा हार निकाल कर लीला को पहनाता है । कामना क्षोभ से देखती है । विलास पर्दा खींच कर खड़ा हुआ मुसकराता है । सब लोग आ जाते हैं । कामना सब का स्वागत करती है । युवक और युवतियों का झुंड बैठता है]

विलास : आज आप लोग मेरे अतिथि हैं, यदि कोई अपराध हो तो क्षमा कीजियेगा ।

क युवती : अतिथि क्या ?

विलास : यही कि मेरे घर पधारे हैं ।

क युवती : हम लोग तो इसे अपना ही घर समझते हैं ।

विनोद : वास्तव में तो घर विलास जी का है ।

विलास : ऐसा कहना तो शिष्टाचार-मात्र है । अच्छे लोग तो ऐसा ही कहते हैं ।

युवक : क्या इस घर के आप ही सब कुछ हैं ? हम लोग कुछ नहीं ?

कामना : आप लोग जब आ गये हैं, तब तक आप लोग भी हैं, परंतु विलासजी की आज्ञानुसार ।

विलास : (हँसकर) हमारे देश में इसको शिष्टाचार कहते हैं । यद्यपि आप लोगों का इस समय हमारे घर पर पूर्ण अधिकार है, परंतु स्वत्व हमारा ही है; क्योंकि जब आप लोग यहाँ से चले जायेंगे, तब तो मैं ही इसका उपभोग करूँगा ।

लीला : कैसी सुंदर बात है, कैसा ऊँचा विचार है !
(सब आश्चर्य से एक-दूसरे का मुँह देखते हैं)

विलास : आप लोग कुछ थके होंगे, इसलिए थोड़ी-थोड़ी पेया पी लीजिये तब खेल होगा । देखिये, आप लोगों को आज एक नया खेल खेलाया जायगा । जो मैं कहूँ, वही करते चलिये ।

युवक : ऐसा ?

विलास : हाँ, आप लोग गाते हुए घूमते और नाचते भी तो हैं ?

युवक : }

युवती : } क्यों नहीं, परंतु उसका समय दूसरा होता है ।

विलास : आज हम जैसा कहें, वैसा करना होगा ।

कामना : अच्छी बात है । नया खेल देखा जायगा ।

[कामना और लीला मदिरा ले आती हैं । विलास सब को पंक्ति से बैठाता और कामना को संकेत करता है]

दोनों सब को मद्य पिलाती हैं, सब प्रसन्न होते हैं]

एक : (नशे में) अब खेल होना चाहिये ।

सब : (मद-विह्वल होकर) हाँ, हाँ, होना चाहिये ।

विलास : अच्छा—(एक से पूछता है) क्यों तुमको कौन स्त्री अच्छी लगती है ? देखो उसके मुख पर कैसा प्रकाश है ।

(एक दूसरे की स्त्री को दिखाता है)

वह युवक : हाँ, इसमें तो कुछ विचित्र विशेषता है ।

विलास : अच्छा तो इनमें से सब लोग इसी प्रकार एक-एक स्त्री को चुन लो ।

[नशे में एक दूसरे की स्त्री को अच्छी समझते हुए उनका हाथ पकड़ते हैं । विलास सब को मंडलाकार खड़ा करता है]

कामना : अब क्या होगा ?

विलास : इस खेल में एक व्यक्ति बीच में रहेगा, जो सब की देख-रेख करेगा ।

कामना : तुम्हीं रहो ।

विलास : नहीं, मुझको तो आज अभी बताना पड़ेगा । आज तुम्हीं देखो । और तुम तो इन लोगों में मुख्य हों भी !

सब : ठीक कहा ।

विलास : अच्छा, तो कामना ! इस खेल की तुम रानी बनोगी । जब तुम कहोगी तभी यह खेल बंद होगा—समझीं !

सब : अच्छी बात है ।

[विलास चद्रहार और कंकण कामना को पहनाता है, सब आश्चर्य से देखते हैं]

विनोद : कामना रानी है ।

विलास : सचमुच रानी है ।

[कामना के संकेत करने पर नृत्य आरम्भ होता है, और विलास गाता है, सब उसका अनुकरण करते हैं]

पीले प्रेम का प्याला !

भर ले जीवन-पात्र में यह अमृतमयी हाला
सृष्टि विकसित हो आँखों में, मन हो मतवाला ।

मधुप पी रहे मधुर मधु, फूलों का सानंद
तारा-मद्यप-मंडली चषक भरा यह चंद ।
सजा अपानक निराला । पी ले.....।

[सब उन्मत्त होकर नाचते-नाचते मद्यप की चेष्टा करते हैं, विवेक का प्रवेश, आश्चर्यचकित होकर देखता है]

विलास : कौन ?

विवेक : यह नरक है या स्वर्ग ?

विलास : बुद्ध ! इसे स्वर्ग कहते हैं । तुम कैसे जान गये ?

विवेक : तो इसी स्वर्ग में नरक की सृष्टि होगी—भागो-भागो ।

विलास : पागल है ।

सब : पागल है—पागल है !

[विवेक क्षोभ से भागता है]

[यवनिका]

द्वितीय अंक

१

[जंगल में विलास, कामना, विनोद और लीला]

लीला : बहुत दूर चले आये । अब हम लोगों को लौटना चाहिये ।

विलास : हाँ, इधर तो द्वीप के निवासी बहुत ही कम आते हैं ।

विनोद : हम समझते हैं, अब इस द्वीप के मनुष्यों को और भूमि की आवश्यकता न होगी ।

कामना : आवश्यकता तो होगी ही ।

विलास : फिर इतना दुर्गम कांतार अनाक्रांत क्यों छोड़ दिया जाय ? संभव है, कालांतर में इधर ही बसना पड़े ।

विनोद : तब इधर—

विलास : तुम्हारे पास तीर और धनुष क्यों है ?

विनोद : आने वाले भय से रक्षा के लिए ।

विलास : परंतु, यदि तुम्हीं उनके लिये भय के कारण बन जाओ, तब ?

विनोद : कैसे ?

विलास : मूर्ख, दुर्दांत पशु जब तुम्हारे ऊपर आक्रमण करते हैं, तब तुम अपने को बचाते हो । यदि तुम उन पर आक्रमण करने लगो, तो वे स्वयं भागेंगे ।

[चार युवक तीर और धनुष लिये आते हैं]

विलास : ये लोग भी आ गये ।

कामना : हाँ, अब तो हम लोगों का एक अच्छा दल हुआ ।

आगंतुक : कहिये, आज यहाँ कौन-सा नया खेल है ?

विलास : जो तुमको हानि पहुँचाने के लिए सदैव तत्पर हैं, उन्हें यदि तुम भयभीत कर सको, तो वे स्वयं कभी साहस न करेंगे, और साथ ही एक खेल भी होगा ।

आगंतुक : बात तो अच्छी है ।

विलास : अच्छा, सब लोग भयानक चीत्कार करो, जिससे पशु निकलेंगे, और तब तुम लोग उन पर तीर चलाना ।

सब : (आश्चर्य से) ऐसा !

विलास : हाँ ।

[सब चिल्लाते हैं ताली पीटते हैं, पशुओं का झाड़ियों के भीतर दौड़ना, तीर लगना और छटपटाना]

सब : बड़ा विचित्र खेल है ।

विलास : खेल ही नहीं, यह व्यायाम भी है ।

कामना : परंतु विलास, देखो यह हरी-हरी घास रक्त से लाल रंगी जाकर भयानक हो उठी है, यहाँ का पवन भाराक्रांत होकर दबे-पाँव चलने लगा है ।

विलास : अभी तुमको अभ्यास नहीं है रानी ! चलो विनोद, सब को लिवाकर तुम चलो ।

[विलास और कामना को छोड़कर सब जाते हैं]

कामना : विलास !

विलास : रानी !

कामना : तुमने ब्याह नहीं किया ।

विलास : किससे ?

कामना : मुझी से, उपासना-गृह की प्रथा पूरी नहीं हुई ।

विलास : परंतु और तो कुछ अंतर नहीं है । मेरा हृदय तो तुमसे अभिन्न ही है । मैं तुम्हारा हो चुका हूँ ।

कामना : परंतु—(सिर झुका लेती है)

विलास : कहो कामना ! (ठुड्की पकड़ कर उठाता है)

कामना : मैं अपनी नहीं रह गयी हूँ प्रिय विलास ! क्या कहूँ ।

विलास : तुम मेरी हो । परंतु सुनो, यदि इस विदेशी युवक से ब्याह करके कहीं तुम सुखी न होओ, या कभी मुझी को यहाँ से चला जाना पड़े ?

कामना : (आश्चर्य और क्षोभ से) नहीं विलास, ऐसा न कहो ।

विलास : परंतु अब तो तुम इस द्वीप की रानी हो । रानी को क्या ब्याह करके किसी बंधन में पड़ना चाहिये ?

कामना : तब तुमने मुझे रानी क्यों बनाया !

विलास : रानी; तुमको इसलिए रानी बनाया कि तुम नियमों का प्रवर्तन करो । इस नियम-पूर्ण संसार में अनियंत्रित जीवन व्यतीत करना मूर्खता है ? नियम अवश्य है । ऐसे नीले नभ में अनंत उल्का-पिंड, उनका क्रम से उदय और अस्त होना, दिन के बाद नीरव निशीथ, पक्ष-पक्ष पर ज्योतिष्मती राका और कुहू, ऋतुओं का चक्र, और निस्संदेह शैशव के बाद उद्दाम यौवन, तब क्षोभ से भरी हुई जरा—ये सब क्या नियम नहीं हैं ?

कामना : यदि ये नियम हैं, तो मैं कह सकती हूँ कि अच्छे नियम नहीं हैं । ये नियम न होकर नियति हो जाते हैं, असफलता की ग्लानि उत्पन्न करते हैं ।

विलास : कामना ! उदार प्रकृति बल, सौंदर्य और स्फूर्ति के फुहारे छोड़ रही है। मनुष्यता यही है कि सहज-लब्ध विलासों का, अपने सुखों का संचय और उसका भोग करे। नियमों के भले और बुरे, दोनों ही कर्तव्य होते हैं; प्रतिफल भी उन्हीं नियमों में से एक है। कभी-कभी उसका रूप अत्यंत भयानक होता है, उससे जी घबराता है परंतु मनुष्यों के कल्याण के लिए उसका उपयोग करना ही पड़ेगा; क्योंकि स्वयं प्रकृति वैसा करती है। देखो, यह सुंदर फूल झड़कर गिर पड़ा। जिस मिट्टी से रस खींचकर फूला था, उसी में अपना रंगरूप मिला रहा है। परंतु विश्वंभरा इस फूल के प्रत्येक केसर-बीज की अलग-अलग वृक्ष बना देगी, और उन्हें सैकड़ों फूल देगी।

कामना : इसमें तो बड़ी आशा है।

विलास : इसी का अनुकरण निग्रह-अनुग्रह की क्षमता का केंद्र प्रतिफल की अमोघ शक्ति से यथाभाग संतुष्ट रखने का साधन राजशक्ति है। इस देश के कल्याण के लिए उसी तंत्र का तुम्हारे द्वारा प्रचार किया गया है, और तुम बनायी गयी हो रानी; और रानी का पुरुष कौन होता है, जानती हो ?

कामना : नहीं बताओ।

विलास : राजा। परंतु मैं तुम्हें ही इस द्वीप की एकच्छत्र अधिकारिणी देखना चाहता हूँ। उसमें हिस्सा नहीं बँटाना चाहता।

कामना : तब मेरा रानी होना व्यर्थ था।

विलास : परंतु तुम्हारी सब सेवा के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। कामना, तुम द्वीप-भर में कुमारी ही बनी रह कर अपना प्रभाव

विस्तृत करो। यही तुम्हारे रानी बनने के लिए पर्याप्त कारण हो जायगा।

कामना : यह क्या ? झूठ !

विलास : मैं जो कहता हूँ। चलो, वे लोग दूर निकल गये होंगे।

[दोनों जाते हैं, पट-परिवर्तन]

२

[पथ में विवेक]

विवेक : डर लगता है। घृणा होती है। मुँह छिपा लेता हूँ। उनकी लाल आँखों में क्रूरता, निर्दयता और हिंसा दौड़ने लगी है। लोभ ने उन्हें भेड़ियों से भी भयानक बना रखा है। वे जलती-बलती आग में दौड़ने के लिए उत्सुक हैं। उनको चाहिये कठोर सोना और तरल मदिरा—देखो-देखो, वे आ रहे हैं।

[अलग छिप जाता है। मद्यप की-सी अवस्था में दो द्वीप-वासियों का प्रवेश]

पहला : अहा ! लीला की कैसी सुंदर गढ़न है।

दूसरा : और जब वह हार पहन लेती है, तो जैसे संध्या के गुलाबी आकाश में सुनहरा चाँद खिल जाता है।

पहला : देखो, तुम उसकी ओर न देखना।

दूसरा : क्यों, विनोद को छोड़कर तुम्हें भी जब यह अधिकार है, तब मैं ही क्यों वंचित रहूँ ?

पहला : परंतु फिर तुम्हारी प्रेयसी को...

दूसरा : बस, बस, चुप रहो।

पहला : तब क्या किया जाय ? वह मुझसे कंकणों के लिए कहती थी, इतना सोना मैं कहाँ से इकट्ठा करूँ ?

दूसरा : नदी के रेत से ।

पहला : बड़ा परिश्रम है ।

दूसरा : तब एक उपाय है...

पहला : क्या ?

दूसरा : शांतिदेव इधर आने वाला है । उसके पास बहुत-सा सोना है । वह ले लिया जाय । तीर और धनुष तो है न ?

पहला : यही करना होगा ।

[विवेक का प्रवेश]

विवेक : क्यों क्या सोचते हो युवक ?

पहला : तुमसे क्यों कहूँ ?

दूसरा : तुम पागल हो ।

विवेक : उन्मत्त ! व्यभिचारी !! पशु !!!

पहला : चुप बूढ़े ।

विवेक : व्यभिचार ने तुम्हें स्त्री-सौंदर्य का कलुषित चित्र दिखलाया है, और मदिरा उस पर रंग चढ़ाती है । क्यों, क्या यह सौंदर्य पहले कहीं छिपा था जो अब तुम लोग इतने लोलुप हो गये हो ।

पहला : जा, जा, पागल बूढ़े, तू इस आनंद को क्या समझे ?

विवेक : सौंदर्य, इस शोभन प्रकृति का सौंदर्य विस्मृत हो चला । हृदय का पवित्र सौंदर्य नष्ट हो गया । यह कुत्सित, यह पदार्थ...

दूसरा : मूर्ख है, अंधा है । अरे मेरी आँखों से देख, तेरी आँखें खुल

जायँगी, कुत्सित हृदय सौंदर्य-पूर्ण हो जायगा, बूढ़े, परंतु तुझे अब इन सब बातों से क्या काम ? जा ।

पहला : तुझे क्या, यदि उसकी भौंह में एक बल है, आँखों के डोरे में खिंचाव है, वक्षस्थल पर तनाव है, और अलकों में निराली उलझन है, चाल में लचीली लटक है ? तू आँखें बंद रख ।

दूसरा : उस पर चमकते हुए सोने के कंकण-हारों से सुशोभित अम्लान आभूषण-परिपाटी मूर्ख....

पहला : पागल है ।

विवेक : मैं पागल हूँ ! अच्छा है जो सज्जन नहीं हूँ; इस बीभत्स कल्पना का आधार नहीं हूँ । हाय ! हाय ! हमारे फूलों के द्वीप के फूल अब मुरझाकर अपनी डाल से गिर पड़ते हैं । उन्हें कोई छूता नहीं । उनके सौरभ से द्वीप-वासियों के घर अब नहीं भर जाते । हाय मेरे प्यारे फूलों ! (जाता है)

दोनों : जा, जा ! (छिप जाते हैं)

[शांतिदेव का प्रवेश]

शांतिदेव : मैं इसे कहाँ रखूँ, किधर से चलूँ ? हैं, मुझे क्या हो गया ! क्यों भयभीत हो रहा हूँ ? इस द्वीप में तो यह बात नहीं थी । परंतु तब सोना भी तो नहीं था ! अच्छा, इस पगडंडी से निकल चलूँ ।

[बगल से निकलना चाहता है कि दोनों छिपे हुए तीर चलाते हैं । शांतिदेव गिर पड़ता है । दोनों आकर उसे दबा लेते हैं । सोना खोजते हैं]

[अकस्मात् शिकारियों के साथ कामना का प्रवेश]

कामना : यह क्या, तुम लोग क्या कर रहे हो ?

लीला : हत्या—

विलास : घोर अपराध !

कामना : (शिकारियों से) बाँध लो इनको, ये हत्यारे हैं ।

[सब दोनों को पकड़ लेते हैं । शांतिदेव को उठाकर ले जाते हैं]

[पट-परिवर्तन]

३

[कुटीर में विनोद और लीला]

लीला : मेरा स्वर्ण-पट्ट ?

विनोद : अभी तक तो नहीं मिला ।

लीला : आज तक आशा-ही आशा है ।

विनोद : परंतु अब सफलता भी होगी ।

लीला : कैसे ?

विनोद : अपराध होना आरंभ हो गया है । अब तो एक दिन विचार भी होगा । देखो, कौन-कौन खेल, होते हैं !

लीला : तुम उन दोनों को कहाँ रख आये ?

विनोद : पहले विचार हुआ कि उपासना-गृह या संग्रहालय में रखे जायँ । फिर यह निश्चित हुआ कि नहीं, मित्र-कुटुंब के लिए जो नया घर बन रहा है, उसी में रखना चाहिये और उन शिकारियों को वहाँ रक्षक नियत किया गया है ।

लीला : इस योजना से कुछ-न-कुछ तुम्हें मिलेगा ।

विनोद : परंतु लीला, हम लोग कहाँ चलें जा रहे हैं, कुछ समझ रही हो ? समझ में आने की ये बातें हैं ?

लीला : अच्छी तरह । (मदिरा का पात्र भरती हुई) कहीं नीचे, कहीं बड़े अंधकार में ।

विनोद : फिर मुझे क्यों प्रोत्साहित कर रही हो ?

[लीला पात्र मुँह से लगा देती है, विनोद पीता है]

लीला : आज तुम्हें गाना सुनाऊँगी ।

विनोद : (मद-विह्वल होकर) सुनाओ प्रिये !

[लीला गाती है]

छटा कैसी सलोनी नराली है,

देखो आयी घटा मतवाली है ।

आओ साजन मधु पियें, पहन फूल के हार,

फूल-सदृश यौवन खिला, है फूल की बहार ।

भरी फूलों से बेले की डाली है ॥ छटा० ॥

शीतल धरती हो गयी, शीतल पड़ी फुहार,

शीतल छाती से लगो, शीतल चली बयार ।

सभी ओर नयी हरियाली है ॥ छटा० ॥

[सहसा कामना का कई युवकों के साथ प्रवेश]

कामना : फूल के हार कहाँ लीला ! तपा हुआ सोने का हार है । शीतलता कहाँ, ज्वाला धधक उठी है । यह आनंद करने का समय नहीं है ।

विनोद : क्या है रानी ?

कामना : विनोद, ये शिकारी उन अपराधियों के रक्षक हैं, इन्हें दिन

रात वहाँ रहना चाहिए। तब इनके जीवन-निर्वाह का प्रबंध.....।

विनोद : जैसी आज्ञा हो।

[विलास का प्रवेश]

विलास : ये शिकारी नहीं, सैनिक हैं, शांति-रक्षक हैं ! सार्वजनिक संग्रहालय पर अधिकार करो। इनमें से कुछ उसकी रक्षा करेंगे, और बचे हुए कारागार की।

विनोद : कारागार क्या ?

विलास : वही जहाँ अपराधी रक्खे जाते हैं, जो शासन का मूल है, जो राज्य का अमोघ शस्त्र है।

लीला : (विनोद से) यह तो बड़ी अच्छी बात है।

कामना : विनोद, मैं तुमको सेनानी बनाती हूँ। देखो, प्रबंध करो। आतंक न फैलने पावे।

विलास : यह लो सेनापति का चिह्न।

[एक छोटा-सा स्वर्ण पट्ट पहनाता है। कामना तलवार हाथ में देती है। सब भय और आश्चर्य से देखते हैं।]

कामना : (शिकारियों से) देखो, आज से जो लोग इनकी आज्ञा नहीं मानेंगे, उन्हें दंड मिलेगा।

[सब घुटने टेकते हैं।]

विलास : परन्तु सेनापति, स्मरण रखना, तुम इस राजमुकुट के विनोद अन्यतम सेवक हो। राजसेवा में प्राण तक दे देना तुम्हारा धर्म होगा।

विनोद : (घुटने टेककर) मैं अनुगृहीत हुआ।

लीला : (धीरे से) परन्तु यह तो बड़ा भयानक धर्म है।

कामना : हाँ विलास जी ।

विलास : आज राजसभा होगी । उसी में कई पद प्रतिष्ठित किये जायँगे । वहीं सम्मान किया जाय ।

कामना : अच्छी बात है ।

[विनोद अपने सैनिकों के साथ परिक्रमण करता है]

[पट-परिवर्त्तन]

४

[पथ में संतोष और विवेक]

संतोष : यह क्या हो रहा है ?

विवेक : इस देश के बच्चे दुर्बल, चिंताग्रस्त और झुके हुए दिखाई देते हैं ! स्त्रियों के नेत्रों में विह्वलता-सहित और भी कैसे-कैसे कृत्रिम भावों का समावेश हो गया है ! व्यभिचार ने लज्जा का प्रचार कर दिया है !

संतोष : छिप कर बातें करना, कानों में मंत्रणा करना, छूरो की चमक से आँखों में त्रास उत्पन्न करना, वीरता नाम के किसी अद्भुत पदार्थ की ओर अंधे होकर दौड़ना युवकों का कर्त्तव्य हो रहा है । वे शिकार और जुआ, मदिरा और विलासिता के दास होकर गर्व से छाती फुलाये घूमते हैं । हम धीरे-धीरे सभ्य हो रहे हैं ?

विवेक : सब बूढ़े मूर्ख और पुरानी लकीर पीटने वाले कहे जाते हैं ।

संतोष : एक-एक पात्र मदिरा के लिए लालायित होकर दासता का बोझ वहन करते हैं । हृदय में व्याकुलता, मस्तिष्क में पाप-कल्पना भरी है ।

विवेक : सोने का ढेर—छल और प्रवंचना से एकत्र करके—थोड़-से ऐश्वर्यशाली मनुष्य द्वीप-भर को दास बनाये हुए हैं। और, आशा में—कल स्वयं भी ऐश्वर्यवान होने की अभिलाषा में बचे हुए सीधे सरल व्यक्ति भी पतित होते जा रहे हैं।

संतोष : हत्या और पापों की दौड़ हो रही है, और धर्म की धूम है।

विवेक : चलो भाई, चलें, अब उपासना-गृह में शासन-सभा होगी वहीं उन हत्यारों का विचार भी होने वाला है। (देखता हुआ) उधर देखो, रानी उपासना-गृह में जा रही हैं !

संतोष : भला यह रानी क्या वस्तु है ?

विवेक : मदिरा से ढुलकती हुई, वैभव के बोझ से दबी हुई, महत्वाकांक्षा की तृष्णा से प्यासी, अभिमान की मिट्टी की मूर्ति।

संतोष : परंतु है प्रभावशालिनी। भला हम लोग तो यह सब नहीं जानते थे। यह कहाँ से...

विवेक : वही विदेशी, इंद्रजाली युवक विलास। उसकी तीक्ष्ण आँखों में कौशल की लहर उठती है। मुसकराहट में शीतल ज्वाला और बातों में भ्रम की बहिया है।

संतोष : परंतु हम सब जानते हुए भी अजान हो रहे हैं।

विवेक : कोई उपाय नहीं ! (जाता है)

[विलास का प्रवेश]

विलास : (स्वगत) यह बड़ा रमणीय देश है ! भोले-भाले प्राणी थे, इनमें जिन भावों का प्रचार हुआ, वह उपयुक्त ही था परंतु सब करके क्या किया ? अपने शाप-ग्रस्त और संघर्षपूर्ण

देश की अत्याचार-ज्वाला से दग्ध होकर निकला। यहाँ शीतल छाया मिली; मैंने क्या किया ?

संतोष : वही ज्वाला यहाँ भी फैला दी, यहाँ भी नवीन पापों की सृष्टि हुई। अब सब द्वीपवासी और उनके साथ तुम भी उसी मानसिक नीचता, पराधीनता, दासता, द्वंद्व और दुखों के अलातचक्र में दग्ध हो रहे हो ! आनंद के लिए सब किया; पर वह कहाँ ! जब मन में आनंद नहीं, तब कहीं नहीं ।

विलास : (देखकर) कौन ? संतोष ! तुम क्या जानोगे ? भावुकता और कल्पना ही मनुष्य को कला की ओर प्रेरित करती है, इसी में उसके कल्याण का रहस्य है, पूर्णता है ।

संतोष : विलास ! तुम्हारे असंख्य साधन हैं। तब भी कहाँ तक ? संसार की अनादि काल से की गयी कल्पनाओं ने जगत को जटिल बना दिया, भावुकता गले का हार हो गयी, कितनी कविताओं के पुराने पत्र पतझड़ के पवन में कहाँ-कहाँ उड़ गये ! तिसपर भी संसार में असंख्य सूक कवितायें हुईं। चन्द्र सूर्य की किरणों की तूलिका से अनंत आकाश के उज्ज्वल पट पर बहुत-से नेत्रों ने दीप्तिमान रेखाचित्र बनाये; परंतु उनका चिह्न भी नहीं है। जिनके कोमल कंठ पर गला दे देना साधारण बात थी, उन्होंने तीसरे सप्तक की कितनी मर्मभेदी तानें लगायीं किंतु वे सर्वग्रासी आकाश के खोखले में विलीन हो गईं !

[संतोष जाता है, कामना का प्रवेश]

कामना : (विलास को देखकर, स्वगत) जैसे खुले हुए ऊँचे कदंब पर वर्षा के यौवन का एक सुनील मेघखंड छाया किये हो—

कैसा मोहन रूप है (प्रकट) क्यों विलास ! यहाँ क्या कर रहे हो ?

विलास : विचार कर रहा हूँ ।

कामना : क्या ?

विलास : जिस इच्छा के बीज का रोपण करता हूँ, हमारी महत्वा-कांक्षा उसी के अंकुरों को सुरक्षित रखने के लिए—सूर्य के ताप से बचाने के लिए—अनंत आकाश को मेघों से ढँक लेती है ।

कामना : तब तो बड़ी अच्छी बात है !

विलास : परंतु संदेह है कि कहीं मधु-वर्षा के बदले करकापात न हो ।

कामना : मीठी भावनाएं करो । प्रिय विलास, मधुर कल्पनाएं करो । संदेह क्यों ?

विलास : सामने देखो—वह समुद्र का यौवन, जल-राशि का वैभव; परंतु उसमें नीची-ऊँची लहरें हैं ।

कामना : नहीं देखते हो, सीपी अपने चमकीले दाँतों से हँस रही हैं । चलो, उपासना-गृह चलें ।

विलास : तुम चलो, मैं अभी आता हूँ ।

[कामना जाती है]

विलास : (स्वागत)—कामना एक सुन्दर रानी होने के योग्य प्रभाव-शालिनी स्त्री है । उसने ब्याह का प्रस्ताव किया था । मैं भी ब्याह के पवित्र बंधन में बँधकर राजा होकर सुखी होता, परंतु मेरी मानसिक अव्यवस्था कैसे छाया-चित्र दिखलाती है ! कोई अदृष्ट शक्ति संकेत कर रही है—नहीं, कामना एक गर्व-पूर्ण और सरल हृदय की स्त्री है । रंगीन

तो है, पर निरीह इन्द्रधनुष के समान उदय होकर विलीन होने वाली है। तेज तो है, पर वेदी के धधकाने से जलने वाली ज्वाला है। मैं उसको अपना हृदय-समर्पण नहीं कर सकता। मुझको चाहिए बिजली के समान वक्र रेखाओं का सृजन करने वाली, आँखों को चौंधिया देने वाली तीव्र और विचित्र ज्वाला, जिसके हृदय में ज्वालामुखी धधकती हो, जिसे ईंधन का काम न हो, वही दुर्दमनीय तेज ज्वाला। मैं उसी का अनुगत हूँगा। यह हृदय उसी का लोहा मानेगा। इस फूलों के द्वीप में मधुप के समान विहार करूँगा। मैं इस देश के अनिर्दिष्ट आकाश-पथ का धूमकेतु हूँ। चलूँ, मेरी महत्त्वाकांक्षा ने अवकाश और समय दोनों की सृष्टि कर दी है। उसमें पदार्थों के द्वारा नयी सृष्टि के साथ मैं भी कुहेलिका-सागर में विलीन हो जाऊँ। (जाता है)

[पट-परिवर्तन]

५

[उपासना गृह नवीन रूप में, विलास सब लोगों को समझा रहा है, सब लोगों को खड़े होकर अभिवादन करना सिखला रहा है, बीच में वेदी, सामने सिंहासन, और दोनों ओर चौकियां हैं। मंडलाकार लोग एकत्र हैं, राजदंड हाथ में लिये हुए कामना रानी का प्रवेश, पीछे सेनापति विनोद और सैनिक]

कामना : (सिंहासन के नीचे वेदी के सामने खड़ी होकर) हे परमेश्वर !
तुम सब से उत्तम हो, सब से महान् हो, तुम्हारी जय हो।

सब : तुम्हारी जय हो।

विलास : आप आसन ग्रहण करें ।

[कामना मंच पर बैठती है]

कामना : आप लोगों को सुशासन की आवश्यकता हो गयी है; क्योंकि इस देश में अपराधों की संख्या बहुत बढ़ती चली जा रही है । यह मेरे लिए गौरव की बात है कि मुझे आप लोगों ने इसके लिए उपयुक्त समझा है । परंतु आप लोगों ने मेरे और अपने बीच का संबंध तो अच्छी तरह समझ लिया होगा ?

एक : नहीं !

विलास : (आश्चर्य से) नहीं समझा ! अरे, तो तुमको इतना भी नहीं ज्ञात हुआ कि यह तुम्हारी रानी है, और तुम इनकी प्रजा ?

सब : हम प्रजा हैं ।

विलास : देखो, ईश्वर असंख्य प्राणियों का, सारी सृष्टि का जिस प्रकार अधिपति है, उसी प्रकार तुम अपने कल्याण के लिए, अपनी सुव्यवस्था से लिए, न्याय और दंड के लिए इनको अपना अधिपति मानते हो । जिस प्रकार एक वन्य पशु दूसरे को सताकर उसे खा जाता है; और उसे दंड देने के लिए मृगया के रूप में ईश्वर हम लोगों को आज्ञा देता है, उसी प्रकार हमारी इस जाति को एक-दूसरे के अपराधियों को दंड देने के लिए रानी की आवश्यकता हुई । और वह हुई—ईश्वर की प्रतिनिधि । अब सब लोग उसकी आज्ञा और नियमों का पालन करें; क्योंकि उसने तुम्हारे कष्टों को मिटाने के लिए पवित्र कुमारी होने का कष्ट उठाया है । उसके संकल्प हमारे कल्याण के लिए होंगे ।

विनोद : यथार्थ है (तलवार सिर से लगाता है)

सब : हम अनुगत हैं। हमारी रक्षा करो।

कामना : तुम सब सुखी होगे। मेरे दो हाथ हैं, एक न्याय करेगा, दूसरा दंड देगा। दंड के लिए सेनापति नियुक्त हैं, परंतु न्याय में सहायता के लिए एक मंत्री की—परामर्शदाता की—आवश्यकता है, जिससे मैं सत्य और न्याय के बल पर शासन कर सकूँ। तुम लोगों में से कौन इस पद को ग्रहण करना चाहता है?

[सब परस्पर मुँह देखते हैं]

कामना : मैं तो विलास को इस पद के उपयुक्त समझती हूँ; क्योंकि इन्हीं की कृपा और परामर्शों से हम लोगों ने बहुत उन्नति कर ली है।

लीला : मेरी भी यही सम्मति है।

सब लोग : अवश्य।

[कामना एक स्वर्णपट्ट विलास को पहनाती है। एक ओर विलास दूसरी ओर विनोद चौकियों पर बैठते हैं। धूनी जलती है]

विलास : अपराधियों को बुलाया जाय।

विनोद : (सैनिकों से)—जाओ, उन्हें ले जाओ।

[दो सैनिक एक-एक को बाँधे हुए ले आते हैं]

कामना : क्यों तुम लोगों ने शांतिदेव की हत्या की है?

विलास : और तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो कि नहीं?

अपराधी १ : हत्या किसे कहते हैं, यह मैं नहीं जानता। परंतु जो वस्तु

मेरे पास नहीं थी, उसी को लेने के लिए हम लोगों ने
शांतिदेव पर तीरों से वार किया ।

अपराधी २ : और इसलिए कि उसके पास का सोना हम लोगों को
मिल जाय ।

कामना : देखो, तुम लोगों ने थोड़े-से सोने के लिए एक मनुष्य की
हत्या कर डाली । यह घोर दुष्कर्म है ।

विलास : और इसका दंड भी ऐसा होना चाहिये कि देखकर लोग
काँप उठें, फिर कोई ऐसा दुस्साहस न करे ।

विवेक : जिससे डरकर लोग तुम्हारा सोना न छुएं ।

कामना : कौन है यह ?

विनोद : वही पागल ।

विवेक : इसने उसी वस्तु को लेने का प्रयत्न किया है, जिसकी
आवश्यकता इस समय समग्र द्वीपवासियों को है । फिर—

विलास : परंतु इसका उद्योग अनुचित था ।

विवेक : मैं पागल हूँ, क्या समझूँगा कि उचित उपाय क्या है ।
उपाय वहीं उचित होगा, जिसे आप नियम का रूप देंगे ।
परंतु मैं पूछता हूँ, यहाँ इतने लोग खड़े हैं, इनमें कौन ऐसा
है, जिसे सोना नहीं चाहिये ?

[कामना विलास का मुँह देखती है]

विवेक : वाह कैसा सुंदर खेल है । खेलने के लिए बुलाते हो, और
उसमें फँसा कर नचाते हो । स्वयं ज्वाला फैला दी है; अब
पतंग गिरने लगे हैं, तो उनको भगाना चाहते हो ?

विलास : न्याय में हस्तक्षेप करने वाले इस बृद्ध को निकाल दो ।
पागलपन की भी एक सीमा होती है ।

[विवेक निकाला जाता है]

कामना : अच्छा, इन्हें बंदीगृह में ले जाओ अंतिम दंड इनको फिर दिया जायगा ।

[बंदियों को सैनिक ले जाते हैं । विलास और कामना बातें करते हैं]

कामना : सेनापति, उपस्थित सभी पुरुषों को आज स्मरण-चिह्न लाकर दो ।

[विनोद सब को स्वर्णमुद्रा देता है]

कामना : प्यारे द्वीपवासियों, मेरी एकांत इच्छा है कि हमारे द्वीप-भर के लोग स्वर्ण के आभूषणों से लद जायें । उनकी प्रसन्नता के लिए मैं प्रचुर साधन एकत्र करूँगी । परंतु उस काम में क्या आप लोग मेरा साथ देंगे ?

सब : यदि सोना मिले, तो हम लोग सब कुछ करने के लिए प्रस्तुत हैं ।

विलास : सब मिलेगा, आप लोग रानी की आज्ञा मानते रहिये ।

एक : अवश्य मानेंगे परंतु न्याय क्या ऐसा ही होगा ?

विलास : यह प्रश्न न करो ।

विनोद : राजकीय आज्ञा की समालोचना करना पाप है ।

विलास : दंड तो फिर दंड ही है । वह मीठी मदिरा नहीं है, जो गले में धीरे से उतार ली जाय ।

सब : ठीक है—यथार्थ है ।

विलास : देखो अब से तुम लोग एक राष्ट्र में परिणत हो रहे हो । राष्ट्र के शरीर का आत्मा राजसत्ता है । उसका सदैव आज्ञा-पालन करना, सम्मान करना ।

सब : हम लोग ऐसा ही करेंगे ।

[विनोद घुटने टेकता है, सब वैसे ही करके जाते हैं]

[पट-परिवर्तन]

६

[शांतिदेव का घर]

लालसा : मेरा कोई नहीं है; साथी, जीवन का संगी और दुःख में सहायक कोई नहीं है । अब यह जीवन बोझ हो रहा है । क्या करूँ अकेली बैठी हूँ, इतना सोना है, परंतु इसका भोग नहीं, इसका सुख नहीं । ओह ! (उठती है और मदिरा का पात्र भरकर पीती है) । परंतु नहीं यह जीवन, जिसके लिए अनंत सुख-साधन हैं, रोककर बिता देने के लिए नहीं है । सब सुखी हैं, सब सुख की चेष्टा में हैं, फिर मैं ही क्यों कोने में बैठकर रुदन करूँ ? देखो, कामना रानी है ! वह भी तो इसी द्वीप की एक लड़की है । फिर कौन-सी बात ऐसी है, जो मेरे रानी होने में बाधक है ! मैं भी रानी हो सकती हूँ, यदि विलास को—हाँ, क्यों नहीं । (अपने आभूषणों को देखती है, वेष-भूषा सँवारती है और गाती है)

किसे नहीं चुम जायँ, नैनों के तीर नुकीले ?
पलकों के प्याले रसीले, अलकों के फन्दे गँसीले,
कौन देखूँ बच जाय, नैनों के तीर नुकीले ।

[विलास का प्रवेश]

विलास : लालसा ! लालसा ! यह कैसा संगीत है ! यह अमृत-वर्षा !
मुझे नहीं विदित था कि इस मरुभूमि में मीठे पानी का

सोता छिपा हुआ बंहरा है। इधर से चला जा रहा था, अकस्मात् यह मनोहर ध्वनि सुनाई पड़ी। मैं आगे न जा सका, लौट आया।

लालसा : (बड़ी रुखाई से देखती हुई) आप कौन हैं ? हाँ, आप हैं ! अच्छा, आ ही गये तो बँठ जाइये।

विलास : सुंदरी ! इतना निष्ठुर विभ्रम ! इतनी अंतरात्मा को मसलकर निचोड़ लेने वाली रुखाई ! तभी तुम्हारे सामने हार मानने की इच्छा होती है।

लालसा : इच्छा होती है, हुआ करे, मैं किसी की इच्छा को रोक सकती हूँ ?

विलास : परंतु पूरी कर सकती हो।

लालसा : स्वयं रानी पर जिसका अधिकार है, उसकी कौन-सी इच्छा अपूर्ण होगी ?

विलास : अब मुझे पर मेरा अधिकार नहीं रहा।

लालसा : देखती हूँ बहुत-सी बातें भी आप से सीखी जा सकती हैं।

विलास : इसका मुझे गर्व था, परन्तु आज जाता रहा। मेरी जीवन-यात्रा में इसी बात का सुख था कि मुझ पर किसी स्त्री ने विजय नहीं पायी; परंतु वह झूठा गर्व था। आज—

लालसा : तो क्या मैं सचमुच सुंदरी हूँ !

विलास : इसमें प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

लालसा : परंतु मैं इसको जाँच लूँगी, तब मानूँगी। दो-एक लोगों से पूछ लूँ। कहीं मुझे झूठा प्रलोभन तो नहीं दिया जा रहा है।

विलास : लालसा, मैं मानता हूँ (स्वगत) अब तो भाव और भाषा में कृत्रिमता आ चली ।

लालसा : फिर किसी दिन, मुझे अपना मूल्य लगा लेने दीजिये ।

विलास : अच्छा, एक बार वही गान तो सुना दो ।

लालसा : जब मंत्री महाशय की आज्ञा है, तब तो पूरी करनी ही पड़ेगी । अच्छा, एक पात्र तो ले लीजिए ।

[पिलाती है—गाती है किसे नहीं चुभ जाय...इत्यादि]

विलास : कोई नहीं, कोई नहीं, इस अस्त्र से कौन बच सकता है ? अच्छा तो फिर किसी दिन ।

[लालसा विचित्र भाव से सिर हिला देती है, विलास जाता है]

[लीला का प्रवेश]

लालसा : आओ सखी, बहुत दिनों पर दिखाई पड़ीं ।

लीला : नित्य आने-आने करती हूँ, परन्तु—

लालसा : परन्तु विनोद से छुट्टी नहीं मिलती ।

लीला : विनोद, वह तो एक निष्ठुर हत्यारा हो उठा है । उसको मृगया से अवकाश नहीं ।

लालसा : तब भी तुम्हारी तो चैन से कटती है ।

[संकेत करती है]

लीला : चुप, तू भी वही—

लालसा : आह, यह लो ।

लीला : मन नहीं लगा, तो तेरे पास चली आई ।

लालसा : तो मेरे पास मन लगने की कौन-सी वस्तु है ? अकेली बंठी हुई दिन बिताती हूँ । गाती हूँ, रोती हूँ, और सोती हूँ !

- लीला : तेरे आभूषणों की तो द्वीप भर में धूम है ।
- लालसा : परंतु दुर्भाग्य की तो न कहोगी ।
- लीला : तू तो बात भी लम्बी-चौड़ी करने लगी । अभी-अभी तो देखा, विलास चले जा रहे हैं ।
- लालसा : और तू कहाँ से आ रही है, वह भी बताना पड़ेगा ।
- लीला : चुप, देख रानी आ रही है ।
- [रक्षकों के साथ रानी का प्रवेश । लालसा और लीला स्वागत करती हैं । संकेत करने पर सैनिक बाहर चले जाते हैं]
- कामना : लालसा, तू लोगों से अब कम मिलती है, यह क्यों ?
- लालसा : रानी, जी नहीं चाहता ।
- कामना : इसी से तो मैं स्वयं चली आयी ।
- लालसा : यह आपकी कृपा है कि प्रजा पर इतना अनुग्रह है ।
- लीला : रानी, इसे बड़ा दुःख है !
- कामना : मेरे राज्य में दुःख !
- लालसा : हाँ रानी ! मैं अकेली हूँ । अपने स्वर्ण के लिए दिन-रात भयभीत रहती हूँ ।
- कामना : लालसा, सब के पास जब आवश्यकतानुसार स्वर्ण हो जायगा, तभी यह अशांति दबेगी ।
- लालसा : रानी, यदि क्षमा मिले, तो एक उपाय बतलाऊँ ।
- रानी : हाँ-हाँ, कहो ।
- लालसा : यह तो सब को विदित है कि शांतिदेव के पास बहुत सोना है । परंतु यह कोई नहीं जानता कि वह कहाँ से आया ।

लीला : हाँ-हाँ, बताओ, वह कहाँ से आया ?

लालसा : नदी-पार के देश से । आज तक इधर के लोग न जाने कब से यही जानते थे कि उस पार न जाना, उधर अज्ञात प्रदेश है । परंतु शांतिदेव ने साहस करके उधर की यात्रा की थी, वह बहुत-से पशुओं और असभ्य मनुष्यों से बचते हुए वहाँ से यह सोना ले आये । जब नदी के इस पार आये, तो लोगों ने देख लिया, और इसी से उनकी हत्या भी हुई ।

कामना : हाँ ! (आश्चर्य प्रकट करती है)

लालसा : हाँ रानी, और उन हत्यारों को आज तक दंड भी नहीं मिला ।

लीला : रानी, उसमें तो व्यर्थ विलंब हो रहा है । अवश्य कोई कठोर दंड उन्हें मिलना चाहिये । बेचारा शांतिदेव !

कामना : अच्छा, चलो आज भृगया का महोत्सव है । वहीं सब प्रबंध हो जायगा ।

[सब जाते हैं, पट-परिवर्तन]

७

[जंगल में एक कुटी, वृक्ष के नीचे बैठी हुई करुणा]

संतोष : (प्रवेश करके) पतझड़ हो रहा है, पवन ने चौंका देने वाली गति पकड़ ली है—इसे बसंत का पवन कहते हैं—मालूम होता है कि कर्कश और शीर्ण पत्रों के बीच चलने में उसकी असुविधा का ध्यान करके प्रकृति ने कोमल-पल्लवों का सृजन करने का समारंभ कर दिया है । विरल डालों में कहीं-कहीं दौ फूल और कहीं हरे अंकुर झूलने लगे हैं । गोधूली में खेतों के बीच की पगड़ंडियाँ निर्जन होने पर भी

मनोंहर हैं—दूर-दूर रहट चलने का शब्द कम और कृषकों का गान विशेष हो चला है। इसी वातावरण में हमारा देश बड़ा रमणीय था, परंतु अब क्या हो रहा है, कौन कह सकता है। सब सुख स्वर्ण के अधीन हो गये। हृदय का सुख खो गया। पतझड़ हो रहा है।

करुणा : मानव जीवन में कभी पतझड़ हैं, कभी वसंत। वह स्वयं कभी पत्तियाँ झाड़कर एकांत का सुख लेता है, कोलाहल से भागता है, और कभी-कभी फल-फूलों से लदकर नोचा-खसोटा जाता है।

संतोष : तुम कौन हो ?

करुणा : इसी अभागे देश की एक बालिका, जहाँ जीवन के साधारण सुख धन के आश्रय में पलते हैं, जिसका अभाव दरिद्रता है।

संतोष : दरिद्रता ! कैसी विकट समस्या ! देवि, दरिद्रता सब पापों की जननी है, और लोभ उसकी सबसे बड़ी संतान है। उसका नाम न लो। देखो, अन्न के पके हुए खेतों में पवन के सर्राटे से लहर उठ रही है। दरिद्रता कैसी ? कपड़े के लिट्ट कपास बिखरे हैं। अभाव किसका है ? सुख तो मान लेने की वस्तु है। कोमल गद्दों पर चाहे न मिले; परंतु निर्जन मूक शिलाखंड से उसकी शत्रुता नहीं।

करुणा : हाँ, वसंत की शोभा है और पतझड़ में भी एक श्री है। परंतु वह सुख के संगीत अब इस देश में कहाँ सुनाई पड़ते हैं जिनमें बृक्षों में—कुंजों में—हलचल हो जाती थी और पत्थरों में झनकार उठती थी। अब केवल एक क्षीण क्रंदन उसके अट्टहास में बोलता है।

संतोष : देवि, तुम्हारे और कौन हैं ?

करुणा : यह प्रश्न इस द्वीप में नहीं था। सब एक कुटुंब थे, परंतु अब तो यही कहना पड़ेगा कि मैं शांतिदेव की बहन हूँ। जब से उसकी हत्या हुई—मैं निस्सहाय हो गयी ! लालसा ने सब धन अपना लिया, और घर में भी मुझे न रहने दिया। वह कहती है कि इस घर और संपत्ति पर केवल मेरा अधिकार है और रहेगा। मैं इस स्थान पर कुटीर बनाकर रहती हूँ। अकेली मैं अन्न नहीं उत्पन्न कर सकती, जंगली फलों पर निर्वाह करती हूँ। मैं और कोई भी संसार के पदार्थ नहीं पा सकती, क्योंकि सबके विनिमय के लिए अब सोना चाहिए। प्राकृतिक अमूल्य पदार्थों का मूल्य हो गया—वस्तु के बदले आवश्यक वस्तु न मिलने से प्राकृतिक साधन भी दुर्लभ है। सोने के लिए सब पागल हैं। अकारण कोई बैठने नहीं देता। जीवन के समस्त प्रश्नों के मूल में अर्थ का प्राधान्य है। मैं दूर से उन धनियों के परिवार का दृश्य देखती हूँ। वे धन की आवश्यकता से इतने दरिद्र हो गये हैं कि उसके बिना उनके बच्चे उन्हें प्यारे नहीं लगते। धन का—अर्थ का—उपभोग करने के लिए बच्चों की—संतानों की—आवश्यकता होती है। मैं अपनी निर्धनता के आँसू पीकर संतोष करती हूँ और लौटकर इसी कुटीर में पड़ी रहती हूँ।

संतोष : धन्य है तू बहन ! आज से मैं तेरा भाई हूँ, मैं तेरे लिए हल चलाऊँगा, तू दुःख न कर, मैं तेरा सब काम करूँगा। जिसका कोई नहीं है, मैं उसी का होकर देखूँगा कि इसमें क्या सुख है। हाँ, नाम तो बताया ही नहीं !

करुणा : करुणा ।

संतोष : और मेरा नाम संतोष है बहन !

करुणा : अच्छा भाई, चलो, कुछ फल है खा लो ।

[दोनों कुटीर में जाते हैं । पट-परिवर्तन]

८

[जंगल में शिकारी लोग मांस भून रहे हैं मद्य चल रहा है, नये शिकार के लिए खोज हो रही है । एक ओर से विलास और विनोद का प्रवेश । दूसरी ओर से कामना, लालसा और लीला का आना । विनोद तलवार निकालकर सिर से लगाता है । वैसा ही सब करते हैं]

सब : रानी की जय हो ।

कामना : तुम लोगों का कल्याण हो ।

विलास : रानी, तुम्हारी प्रजा तुम्हें आशीर्वाद देती है ।

विनोद : उसके लिए वैभव और सुख का आयोजन होना चाहिए ।

कामना : लालसा सोने की भूमि जानती है । वह तुम लोगों को बतावेगी । क्या उसे पाने के लिए तुम लोग प्रस्तुत हो ?

सब : हम सब प्रस्तुत हैं ।

लालसा : उसके लिए बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा ।

सप : हम सब उठावेंगे ।

लालसा : अच्छा, तो मैं बताती हूँ ।

विनोद : और, इस प्रसन्नता में मैं पहले से आप लोगों को एक वनभोज के लिए आमंत्रित करता हूँ ।

लीला : परंतु लालसा की एक प्रार्थना है ।

सब : अवश्य सुननी चाहिए ।

लालसा : शांतिदेव की हत्या का प्रतिशोध ।

[सब एक दूसरे का मुँह देखते हैं । लालसा विलास की ओर आशा से देखती है]

विलास : अवश्य, उन हत्यारे बंदियों को बुलाओ ।

[चार सैनिक जाते हैं]

कामना : हाँ, तो तुम लोगों को उस भूमि पर अधिकार करना होगा । डरोगे तो नहीं ? वह भूमि नदी के उस पार है ।

एक : जिधर हम लोग आज तक नहीं गये ?

विनोद : इसी कायरता के बल पर स्वर्ण का स्वप्न देखते हो ?

सब : नहीं, नहीं, सेनापति, आपने यह अनुचित कहा । हम सब वीर हैं ।

विनोद : यदि वीर हो, तो चलो—वीरभाग्या तो वसुंधरा होती ही है । उस पर जो सबल पादाघात करता है, उसे वह हृदय खोलकर सोना देती है ।

कामना : लालसा को धन्यवाद देना चाहिये ।

[बंदी हत्यारों के साथ सैनिकों का प्रवेश]

लालसा : यही है, यही है मेरे शांतिदेव का हत्यारा !

कामना : तुम लोगों ने अपराध स्वीकार किया ?

विवेक : (प्रवेश करके) मैंने तो आज बहुत दिनों पर यह नयी सृष्टि देखी है । परंतु जो देखता हूँ, वह अद्भुत है । इन्होंने एक हत्या की थी सोने के लिए परंतु तुम लोग उदर पोषण के लिए सामूहिक रूप से आज निरीह प्राणियों की हत्या का महोत्सव मना रहे हो । कल इसी प्रकार मनुष्यों की हत्या का आयोजन होगा ।

हत्यारे : हमते कोई अपराध नहीं किया ।

लीला : हत्यारों को इतना बोलने का अधिकार नहीं ।

लालसा : इन्हें इन्हीं शिकारियों से मरवाना चाहिए ।

विलास : जिसमें सब भयभीत हों, वैसा ही दंड उपयुक्त होगा ।

कामना : ठीक है । इसी वृक्ष से इन्हें बाँध दिया जाय । और सब लोग तीर मारें ।

[मदिरोन्मत्त सैनिक वैसा ही करते हैं । कामना मुंह फेर लेती है]

विवेक : रानी, देखो अपना कठोर दंड देखो । और देखो अपराध से गपराध-परंपरा की सृष्टि ।

विलास : इस पागल को तुम लोग यहाँ क्यों आने देते हो ।

विवेक : मेरी भी इस खुली हुई छाती पर दो-तीन तीर ! रक्त की धारा वक्षस्थल पर बहेगी, तो मैं भी समझूँगा कि तपा हुआ लाल सोने का हार मुझे उपहार में मिला है । रानी के सभ्य राज्य का जय-घोष करूँगा । लोह के प्यासे भेड़ियो—तुम जब बर्बर थे, तब क्या इससे बुरे थे ? तुम पहले इससे भी क्या विशेष असभ्य थे ? आज शासन-सभा का आयोजन करके सभ्य कहलाने वाले पशुओं—कल का तुम्हारा धुंधला अतीत इससे उज्ज्वल था ।

कामना : यह बूढ़ा तो मुझे भी पागल कर देगा ।

विनोद : हटाओ इसको ।

[दो सैनिक उसे निकालते हैं]

विलास : तो लालसा कब बतावेंगी उस भूमि को ।

लालसा : मैं साथ चलूँगी ।

विलास : फिर उस देश पर आक्रमण की आयोजना होनी चाहिये ।

कामना : सब सैनिक प्रस्तुत हो जायँ ।

सब : जब आज्ञा हो ।

विनोद : वन-भोज समाप्त करके ।

[सैनिक घूमते हैं]

कामना : अच्छी बात है ।

[सब स्त्री-पुरुष एकत्र बैठते हैं । मद्य-मांस का भोज ।
जन्मत्त होकर सब का विकट नृत्य]

विनोद : मेरा एक प्रस्ताव है ।

सब : कहिये ।

विनोद : यदि रानी की आज्ञा हो ।

कामना : हाँ, हाँ, कहो ।

विनोद : ऐसी उपकारिणी लालसा के कष्टों का ध्यान कर सब लोगो को चाहिर कि उनसे ब्याह कर लेने की प्रार्थना की जाय । कृतज्ञता प्रकाश करने का यह अच्छा अवसर है ।

कामना : परंतु—

विलास : नहीं रानी, उसका जीवन अकेला है, और अकेली पवित्रता केवल आपके लिए—

कामना : हाँ, अच्छी बात है; परंतु किसके साथ ?

एक स्त्री : नाम तो लालसा कौ ही बताना पड़ेगा ।

लालसा : मैं तो नहीं जानती । (लज्जित होती है) ।

लीला : तो मैं चाहती हूँ कि हम लोगों के परम उपकारी विलास

जो ही इस प्रार्थना को स्वीकार करें। यह जोड़ी बड़ी अच्छी होगी।

सब : (एक स्वर से) बहुत ठीक है।

[विनोद लालसा का और लीला विलास का हाथ पकड़कर मिला देते हैं। कामना त्रस्त हो उस यूथ से अलग होकर खड़ी हो जाती है और आश्चर्य तथा करुणा से देखती है। स्त्रियाँ घेर कर नाचती हुई गाती हैं]

छिपाओगी कैसे—आँखें कहेंगी।

बिथुरी अलक पकड़ लेती है,
प्रेम की आँख चुराओगी कैसे—आँखें कहेंगी।

राग-रक्त होते कपोल हैं
लेते ही नाम बताओगी कैसे—आँखें कहेंगी।

[यवनिका]

तृतीय अंक

९

[नवीन नगर के एक भाग में आचार्य दंभ का घर । क्रूर, दुर्वृत्त, प्रमदा और दंभ]

दंभ : निर्जन प्रांतों में गंदे झोपड़े ! बिना प्रमोद की रातें । दिन भर कंडी धूप में परिश्रम करके मृतकों की-सी अवस्था में पड़ रहना । संस्कृति-विहीन, धर्म-विहीन जीवन ! तुम लोगों का मन तो अवश्य ऊब गया होगा ।

प्रमदा : आचार्य—कहीं मदिरा की गोष्ठी के उपयुक्त स्थान नहीं ! संकेत-गृहों का भी अभाव ! उजड़े कुंज, खुले मैदान और जंगल, शीत, वर्षा तथा ग्रीष्म की सुविधा का कोई साधन नहीं । कोई भी विलासशील प्राणी कैसे सुख पावे ।

दंभ : इसीलिए तो नवीन नगर-निर्माण की मेरी योजना सफल हो चली है । झुंड-के-झुंड लोग इसमें आकर बसने लगे हैं । जैसे मधुमक्खियाँ अपने मधु की रक्षा के लिए मधुचक्र का सृजन करती हैं, वैसे ही इस नगर में धर्म और संस्कृति की रक्षा होगी । नवीन विचारों का यह केंद्र होगा । धर्म-प्रचार में यहाँ से बड़ी सहायता मिलेगी ।

दुर्वृत्त : बड़ा सुन्दर भविष्य है । सुन्दर महल, सार्वजनिक भोजनालय, संगीत-गृह और मंदिर तो हैं हीं; इनमें धर्म-भावनाओं की भव्यता बड़ा प्रभाव उत्पन्न कर रही है । देहाती अर्धसभ्य

मनुष्यों को ये विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। इससे उनके मानसिक विकास में बड़ी सहायता मिलेगी।

क्रूर : यह तो ठीक है। यहाँ पर अधिक-से-अधिक सोने की आवश्यकता होगी। यहाँ व्यय की प्रचुरता नित्य अभाव का सृजन करेगी। और अन्य स्थानों की अच्छी वस्तु यहाँ एकत्र करने के लिए नये उद्योग-धंधे निकालने होंगे।

दंभ : स्वर्ण के आश्रय में ही संस्कृति और धर्म बढ़ सकते हैं। उपाय जैसे भी हों, उनसे सोना इकट्ठा करो; फिर उसका सदुपयोग करके हम प्रायश्चित्त कर लेंगे।

प्रमदा : स्त्रियाँ पुरुषों की दासता में जकड़ गयी हैं; क्योंकि उन्हें ही स्वर्ण की अधिक आवश्यकता है। आभूषण उन्हीं के लिए हैं। मैंने स्त्रियों की स्वतंत्रता का मन्दिर खोल दिया है—जहाँ वे नवीन वेष-भूषा से अद्भुत लावण्य का सृजन करेंगी। पुरुष स्वयं अब उनके अनुगत होंगे। मैं वैवाहिक जीवन को धृणा की दृष्टि से देखती हूँ। उन्हें धर्म-भक्तों की देवदासी बनाऊँगी।

दुर्वृत्त : और यहाँ कौन उसे अच्छा समझता है। पर मैंने कुछ दूसरा ही उपाय सोच लिया है।

क्रूर : वह क्या ?

दुर्वृत्त : इतने मनुष्यों के एकत्र रहने में सुव्यवस्था की आवश्यकता है। नियमों का प्रचार होना चाहिये। इसलिए इस धर्म-भवन से समय-समय पर व्यवस्थाएँ निकलेंगी। वे अधिकार उत्पन्न करेंगी और जब उनमें विवाद उत्पन्न होगा, तो हम लोगों का लाभ ही होगा। नियम न रहने से विशृंखलता जो उत्पन्न होगी !

क्रूर : प्रमदा के प्रचार से विलास के परिणाम-स्वरूप रोग भी उत्पन्न होंगे। इधर अधिकारों को लेकर झगड़े भी होंगे, मार-पीट होगी। तो फिर मैं औषधि और शस्त्र-चिकित्सा के द्वारा अधिक-से-अधिक सोना ले सकूंगा।

प्रमदा : परंतु आचार्य की अनुमति क्या है ?

दुर्वृत्त : आचार्य होंगे व्यवस्थापक। फिर तो अवस्था देखकर ही व्यवस्था बनानी पड़ेगी।

दंभ : संस्कृति का आंदोलन हो रहा है। उसकी कुछ लहरें ऊँची हैं और कुछ नीची। यह भेद अब फूलों के द्वीप में छिपा नहीं रहा। मनुष्य-मात्र के बराबर होने के कोरे असत्य पर से अब विश्वास उठ चला है। उसी भेद-भाव को लेकर समाज अपना नवीन सृजन कर रहा है। मैं उसका संचालन करूँगा।

दुर्वृत्त : परोपकार और सहानुभूति के लिए समाज की अत्यंत आवश्यकता है।

दंभ : योग्यता और संस्कृति के अनुसार श्रेणी-भेद हो रहा है। जो समुन्नत विचार के लोग हैं, उन्हें विशिष्ट स्थान देना होगा। धर्म, संस्कृति और समाज की क्रमोन्नति के लिए अधिकारी चुने जायेंगे। इससे समाज की उन्नति में बहुत-से केन्द्र बन जायेंगे जो स्वतंत्र रूप से इसकी सहायता करेंगे। उस समय हमारी जाति समृद्ध और आनंद-पूर्ण होगी। इस नगर में रहकर हम लोग युद्ध और आक्रमणों से भी बचेंगे।

[विवेक प्रवेश करके]

विवेक : बाबा ! ये बड़े-बड़े महल तुम लोगों ने क्यों बना डाले ?

क्या अनंत काल तक जीवित रहकर दुख भोगने की तुम लोगों की बलवती इच्छा है ?

दंभ : गंदा वस्त्र, असभ्य व्यवहार, यह कैसा पशु के लमान मनुष्य है ! इसको लज्जा नहीं आती ।

विवेक : जो अपराध करता है, उसे लज्जा होती है । मैं क्यों लज्जित होऊँ । मुझे किसी स्त्री की ओर प्यासी आँखों से नहीं देखना है । और न तो कपड़ों के आडंबर में अपनी नीचता छिपानी है ।

दुर्वृत्त : बर्बर ! तुझे बोलने का भी ढंग नहीं मालूम ! जा, चला जा, नहीं तो मैं बता दूँगा कि नागरिकों से कैसे व्यवहार किया जाता है ।

विवेक : काँटे तो बिछ चुके थे उनसे पंर बचाकर चलने में त्राण हो जाता, परंतु तुम लोगों ने नगर बनाकर धोखे की दृष्टियों और चालों का भी प्रस्तार किया है । तुम्हीं मुँह के बल गिरोगे । सम्हलो । लौट चलो उस नैसर्गिक जीवन की ओर, क्यों कृत्रिमता के पीछे दौड़ लगा रहे हो ।

प्रमदा : जा बूढ़े, जा; कहीं से एक पात्र मदिरा माँग कर पी ले, और उसके आनंद में कहीं पड़ रह । क्यों अपना सिर खपाता है ।

विवेक : ओह ! शांति और सेवा की मूर्ति—स्त्री के मुख से यह क्या सुन रहा हूँ—फूलों के मुँह से वीभत्सता की ज्वाला निकलने लगी हैं । शिशिर-प्रभात के हिम-कण चिनगारियाँ बरसाने लगे हैं । पिता ! इन्हें अपनी गोद में ले लो !

दंभ : चुप ! धर्म-शिक्षा देने का तुझे अधिकार नहीं—जा, अपनी माँद में घुस । अस्पृश्य; नीच !!

विवेक : मैं भागूँगा, इस नगर-रूपी अपराधों के घोंसले से अवश्य भागूँगा—परंतु तुम पर दया आती है ! (जाता है)

दंभ : गया । सिर दुखने लगा । इस बकवादी को किसी ने रोका भी नहीं ।

दुर्वृत्त : इन्हीं सब बातों के लिए नियम की—व्यवस्था की—आवश्यकता है ।

प्रमदा : जाने दो । कुछ मदिरा का प्रसंग चले । देखो, वे नागरिक आ रहे हैं ।

[मद्यपात्र लिये हुए नागरिक और स्त्रियाँ आती हैं सबका पान और नृत्य]

[पट-परिवर्तन]

२

[स्कंधावार में पट-मंडप । कामना रानी]

कामना : प्रकृति शांत है, हृदय चंचल है । आज चाँदनी का समुद्र बिछा हुआ है । मन मछली के समान तैर रहा है; उसकी प्यास नहीं बुझती । अनंत नक्षत्र-लोक से मधुर वंशी की झनकार निकल रही है; परंतु कोई गाने वाला नहीं है । किसी का स्वर नहीं मिलता ! दासी ! प्यास—

[संतोष का प्रवेश]

कामना : कौन ? संतोष !

संतोष : हाँ रानी ?

कामना : बहुत दिनों पर दिखाई पड़े ।

संतोष : हाँ रानी !

कामना : किधर भूल पड़े ? अब क्या डर नहीं लगता ?

संतोष : लगता है रानी !

कामना : (कुछ संकोच से) फिर भी किस साहस से यहाँ आये ।

संतोष : (मुस्कराकर) देखने के लिए कि मेरी आवश्यकता अब भी है कि नहीं ।

कामना : परिहास न करो संतोष !

संतोष : परिहास ! कभी नहीं । जब हृदय ने पराभव स्वीकार करके विजयमाला तुम्हें पहना दी और तुम्हारे कपोलों पर उत्साह की लहर खेल रही थी, उसी समय तुमने ठोकर लगाकर मेरी सुन्दर कल्पना को स्वप्न कर दिया । रमणी का रूप—कल्पना का प्रत्यक्ष—संभावना की साकारता और दूसरे अतीन्द्रिय रूप-लोक, जिसके सामने मानवीय महत्-अहम-भाव लोटने लगता है । जिस पिच्छिल भूमि पर स्थलन विवेक बनकर खड़ा होता है । जहाँ प्राण अपनी अतृप्त अभिलाषा का आनन्द-निकेतन देखकर पूर्ण वेग से धमनियों से दौड़ने लगता है । जहाँ चिंता विस्मृत होकर विश्राम करने लगती है । वहीं, रमणी का—तुम्हारा—रूप देखा था—और यह नहीं कह सकता कि मैं झुक नहीं गया । परंतु मैंने देखा कि उस रूप में पूर्ण चंद्र के वैभव की चंद्रिका-सी सब को नहला देने वाली उच्छृङ्खल वासना । वह अपार यौवन-राशि समुद्र के जल-स्तूप के समान समुन्नत—उसमें गर्व से ऊँची रहस्य-पूर्ण कुतूहल की प्रेरणा थी । मैंने विचारा कि यह प्यास बुझाने का मधुर-स्रोत नहीं हैं, जो मल्लिका की मीठी छाँह में बहता है ।

कामना : क्या यह संभव नहीं कि तुमने भूल की हों, उसे उजेले में न देखा हो । अंधेरे में अपनी वस्तु न पहचान सके हो !

संतोष : वह तमिस्रा न थी, और न तो अंधकार था, प्रेम की गोधूली थी, संध्या थी। जब वृक्षों की पत्तियाँ सोने लगती हैं, जब प्रकृति विश्राम करने का सज्जेत करती है। पवन रुक कर सन्ध्या-सुन्दरी के सीमन्त में सूर्य का सिन्दूर की रेखा लगाना देखने लगता है। पक्षियों का घर लौटने का मङ्गल गान होने लगता है, सृष्टि के उस रहस्यपूर्ण समय में जब न तो तीव्र, चाँका देने वाला आलोक था—न तो नेत्रों को ढँक लेने वाला तम था, तुम्हें देखने की—पहचानने की—चेष्टा की, और तुम्हें कुहक के रूप में देखा।

कामना : और देखते हुए भी आँखें बन्द थीं।

संतोष : मेरे पास कौन सम्बल था कामना—रानी !

कामना : ओह ! मेरा भ्रम था !

संतोष : क्या तुम्हें दुःख है कामना !

कामना : मेरे दुखों को पूछकर और दुखी न बनाओ।

संतोष : नहीं कामना, क्षमा करो। तुम्हारे कपोलों के ऊपर और भौंहों के नीचे एक श्याम मण्डल है, नीरव रोदन हृदय में और गम्भीरता ललाट में खेल रही है ! और भी एक लज्जा नाम की नयी वस्तु पलकों के परदे में छिपी है, जो कुछ ऐसी मर्म की बातें जानती है, जिन्हें हम लोग पहले नहीं जानते थे।

कामना : जाने दो संतोष ! तुम्हें अब इससे क्या ! तुम तो सुखी हो।

संतोष : सुखी। हाँ मैं सुखी हूँ—मेरी एक ही अवस्था है। दुखों की बात उनसे पूछो, तुम्हारी राज्य-कल्पना से जिनकी मानसिक शुभेच्छा एक बार ही नष्ट हो गयी है। जिन पर

कल्याण की मधु-वर्षा नहीं होती; उन अपनी प्रजाओं से पूछो और पूछो अपने मन से ।

कामना : जाओ संतोष, मुझे और दुखी न बनाओ ।

(सिर झुका लेती है)

संतोष : अच्छा रानी, मैं जाता हूँ (जाता है)

कामना : (कुछ देर बाद सिर उठाकर) क्या चला गया—

(दासी पात्र लिये आती है, और सखियाँ आती हैं)

पहली : रानी, मन कैसा है ?

दूसरी : मैं बलिहारी, यह उदासी क्यों है ?

कामना : यह पूछकर तुम क्या करोगी ?

पहली : फिर किससे कहोगी ?

दूसरी : पगली ! देखती नहीं ! स्त्री होकर भी नहीं जानती, नहीं समझती ।

पहली : रानी, देश में अन्य बहुत-से युवक हैं ।

कामना : तो फिर ?

दूसरी : ब्याह कर लो रानी !

कामना : चुप मूर्ख ! मैं पवित्र कुमारी हूँ । मैं सोने से लदी हुई, परिचारिकाओं से घिरी हुई, अपने अभिमान-साधना की कठिन तपस्या करूँगी । अपने हाथों से जो विडम्बना मोल ली है उसका प्रतिफल कौन भोगेगा ? उसका आनन्द, उसका ऐश्वर्य और उसकी प्रशंसा, क्या इतना जीवन के लिये पर्याप्त नहीं है ?

पहली : परंतु—

दूसरी : जीवन का सुख, स्त्री होने का उच्चतम अधिकार कहाँ मिला ? रानी, तुम किसी पुरुष को अपना नहीं बना सकतीं ।

कामना : देखती हूँ; तू बहुत बड़ी चली जा रही है । क्या तुझे—

पहली : क्षमा हो, अपराध क्षमा हो ।

दूसरी : रानी, मुझे चाहे तीरों से छिदवा दो; परंतु मैं एक बात बिना कहे न मानूँगी । जब इस विदेशी विलास को तुम्हारे साथ देखती हूँ, तब मैं क्रोध से काँप उठती हूँ । कुछ वश नहीं चलता, इससे रोने लगती हूँ । बस, और क्या कहूँ !

कामना : प्यारी, तू उस बात को न सुना, उसे बधिरता के घने परदे में छिपा रहने दे । मेरे जीवन के निकटतम रहस्य को अमावस्या से भी काली चादर में छिपा रख । मैं रोना चाहती हूँ; पर रो नहीं सकती । हाँ—

दूसरी : अच्छा, मैं कुछ गाऊँ, जिसमें मन बहले ।

कामना : सखी--

(गान)

जाओ, सखी, तुम जी न जलाओ,
हमें न सताओ जी ।

पहली : तुम व्यर्थ रहों बकतीं,

कामना : तुम जान नहीं सकतीं,

मन की कथा है कहने की नहीं,

दूसरी : मत बात बनाओ जी ।

पहली : समझोगी नहीं सजनी,

दूसरी : भव प्रेममयी रजनी,

भर-नैन सुधा छवि चाख गयी
अब क्या समझाओ जी ।

[विलास का प्रवेश]

विलास : रानी !

कामना : (सम्हल कर) क्यों विलास ! यह नगर कैसा बसाया जा रहा है ?

विलास : आज भयानक युद्ध होगा । कल बताऊँगा ।

कामना : अच्छा खेल होगा, सभ्यता का तांडव नृत्य होगा । वीरता की तृष्णा बुझेगी, और हाथ लगेगा सोना !

विलास : व्यंय न करो रानी ! विनोद आज मदिरा में उन्मत्त है; कोई सेनापति नहीं हैं ।

कामना : तो मैं चलूँ ?

विलास : मैं तो पूछ रहा हूँ ।

कामना : अच्छी बात है, आज तुम्हीं सेनापति का काम करो । लीला और लालसा भी रणक्षेत्र में साथ जायँगी कि नहीं ?

(नेपथ्य में कोलाहल)

विलास : (बिगड़कर) स्त्रियों के पास और होता क्या है ।

कामना : कुछ नहीं, अपना सब कुछ देकर ठोकरें खाना ! उपहास का लक्ष्य बन जाना !

विलास : इस समय युद्ध के सिवा और कुछ नहीं ! फिर किसी दिन उपालम्भ सुन लूँगा । (वेग से जाता है ।)

[लीला और लालसा के साथ मद्यप विनोद का प्रवेश]

विनोद : रानी, सब पागल हैं ।

कामना : एक तुमको छोड़कर विनोद ।

विनोद : मैं तो कहता हूँ; दस घड़े रक्त के न बहाकर यदि एक पात्र मदिरा पी लो, सब-कुछ हो गया ।

लीला : रानी, देखो, यह सोने का जाल नया बनकर आया है ।

कामना : बहुत अच्छा है ।

कासना : और यह सोने के तारों से बिनी हुई नयी साड़ी तो देखी ही नहीं । (दिखाती है)

कामना : वाह ! कितनी सुन्दर शिल्पकला है !

विनोद : इस देश से खूब सोना घर भेजा गया है । वहाँ नये-नये सौन्दर्य-साधन बनाये जा रहे हैं । रानी, लाल रक्त गिराने से पीला सोना मिलने लगा । कैसा अच्छा खेल है ।

कामना : बहुत अच्छा ।

लालसा : आज विलास सेनापति होकर आक्रमण करने गये हैं, तो विनोद, तुम्हीं मेरे पटमण्डप में चलो । मैं अकेली कैसे रहूँगी ?

विनोद : हाँ, यह तो अत्यन्त खेद की बात है । परन्तु कोई चिन्ता नहीं । चलो । (दोनों जाते हैं)

लीला : रानी !

कामना : लीला !

लीला : यह सब क्या हो रहा है ?

कामना : ऐश्वर्य और सभ्यता के परिणाम !

लीला : तुम रानी हो, रोको इसे ।

कामना : मेरा स्वर्ण-पट्ट देखकर प्रथम तुम्हीं को इसकी चाह हुई, आकांक्षा हुई । अब क्या, देश में धनवान और निर्धन,

शासकों का तीव्र तेज, दोनों की विनम्र-दयनीय दासता, सैनिक-बल का प्रचण्ड प्रताप, किसानों की भारवाही पशु की-सी पराधीनता, ऊँच और नीच, अभिजात और बर्बर, सैनिक और किसान, शिल्पी और व्यापारी और इन सभी के ऊपर सभ्य व्यवस्थापक—सब कुछ तो हैं। नये-नये संदेश, नये-नये उद्देश्य नयी-नयी संस्थाओं का प्रचार, सब कुछ सोना और मदिरा के बल से हो रहा है। हम जागते में स्वप्न देख रहे हैं।

गीला : ओह ! (जाती है)

[दो सैनिक एक स्त्री को बाँधकर लाते हैं]

कामना : यह कौन है ?

निक : युद्ध में यह बन्दी बनायी गयी है।

कामना : इसका अपराध ?

निक : सेनापति के आने पर वह स्वयं निवेदन करेंगे। हम लोगों को आज्ञा हो तो जायँ, युद्ध समाप्त होने के समीप है।

कामना : जाओ।

[दोनों जाते हैं]

गी : तुम रानी हो ?

कामना : हाँ।

गी : रानी बनने की साध क्यों हुई ? क्या आँखें इतनी रक्तधारा देखने की प्यासी थीं ? क्या इतनी भीषणता के साथ तुम्हारा ही जयघोष किया जाता है ?

कामना : मेरे दुर्भाग्य से !

स्त्री : और तुम चुपचाप देखती हो ?

कामना : तुम बन्दी हो, चुप रहो ।

[रक्ताक्त-कलेवर विजयी विलास का प्रवेश]

विलास : जय ! रानी की जय !

कामना : क्या शत्रु भाग गये ?

विलास : हाँ रानी !

कामना : अच्छा विलास, बैठो, विश्राम करो ।

विलास : (देखकर) आहा । यह अभी यहीं है । इसको मेरे पटमण्डप में न ले जाकर यहाँ किसने छोड़ दिया है ?

कामना : वह सैनिक इसे यहीं पकड़ लाया । परंतु कहो विलास, इसे क्यों पकड़ा ?

विलास : तुमको रानी, राज्य करने से काम, इन पचड़ों में क्यों पड़ती हो ? युद्ध में स्त्री और स्वर्ण, यही तो लूट के उपहार मिलते हैं । विजयी के लिए यही प्रसन्नता है । इसे मेरे यहाँ भेज दो ।

कामना : विलास, तुमको क्या हो गया है ? मैं रानी हूँ, तुम्हारी शय्या सजाने की दासी नहीं ।

स्त्री : दोहाई रानी की ! तुम्हारे राज्य के बदले मुझे ऐसा पुरुष नहीं चाहिए । मुझे बचाओ, यह नरपिशाच ! ओह—

[मुँह ढाँकती]

विलास : अच्छा जाता हूँ । (सरोष प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

[पथ में लालसा]

लालसा : दारुण ज्वाला, अतृप्ति का भयानक अभिशाप ! मेरे जीवन का संगी कौन है ? मैं लालसा हूँ, जन्म भर जिसे संतोष नहीं हुआ ! नगर से आ रही हूँ । प्रमदा के स्वतन्त्रता-भवन के आनन्द-विहार से भी जी नहीं भरा, कोई किसी को रोक नहीं सकता और न तो विहार की धारा में लौटने की वाधा है । उच्छृंखल उन्मत्त विलास—मदिरा की विस्मृति । विहार की श्रान्ति फिर भी लालसा ! (देखकर) अरे मैं घूमती-घूमती किधर निकल आयी ? कहीं बहुत दूर । यदि कोई शत्रु आ गया तो (ठहर कर सोचती है) क्या चिन्ता ?

[एक शत्रु सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : तुम कौन हो ?

लालसा : मैं, मैं !

सैनिक : हाँ, तुम ।

लालसा : सेनापति विलास की स्त्री ।

सैनिक : जानती हो, कल तुम्हारे सेनापति ने मेरी स्त्री को पकड़ लिया है ? आज तुमको यदि मैं पकड़ ले जाऊँ ?

लालसा : (मुसकराकर) कहाँ ले जाओगे ?

सैनिक : यह क्या ?

लालसा : कहाँ चलूँ, पूछती तो हूँ । तुम्हारे सदृश पुरुष के साथ चलने में किस सुन्दरी को शंका होगी ?

सैनिक : इतना अधःपतन ! हम लोगों ने तो समझा था कि तुम्हारे देश के लोग केवल स्वर्ण-लोलुप शृगाल ही हैं, परंतु नहीं, तुम लोग तो पशुओं से भी गए-बीते हो । जाओ ।

लालसा : तो क्या तुम चले जाओगे ? मेरी ओर देखो ।

सैनिक : छिः ! देखने के लिये बहुत-सी उत्तम वस्तुएँ हैं । सरल शिशुओं की निर्मल हँसी, शरद का प्रसन्न आकाश-मण्डल, वसन्त का विकसित कानन, वर्षा की तरंगिणी-धारा, माता और सन्तानों का विनोद देखने से जिसे छुट्टी हो, वह तुम्हारी ओर देखें ।

लालसा : तुम्हारे वाक्य मेरी कर्मेन्द्रियों को मांग रहे हैं । मैं कैसे छोड़ दूँ, कैसे न दूँ । ठहरो, मुझे इस सम्पूर्ण मनुष्यत्व को आँखों से देख लेने दो ।

सैनिक : जाओ रमणी, लौट जाओ ! तुम्हारा सेना-निवेश दूर है ।

लालसा : फिर तुम्हें इतने रूप की क्या आवश्यकता थी, जब हृदय ही न था ?

[तिरस्कार से देखता हुआ सैनिक जाता है]

लालसा : (स्वगत) चला जायगा । यों नहीं (प्रकट) अच्छा तो सुनो । क्या तुम अपनी स्त्री को भी नहीं छोड़ना चाहते ?

सैनिक : (लौटकर) अवश्य छोड़ना चाहता हूँ—प्राण भी देकर ।

लालसा : तुम्हारे शिष्ट आचरण का प्रतिदान करूंगी । चलोगे, डरते तो नहीं ?

[दोनों जाते हैं, विलास का प्रवेश]

विलास : यह उन्मत्त विलास-लालसा ! वक्षःस्थल में प्रवल पीड़ा । ओह ! अविश्वासिनी स्त्री, तूने मेरे पद की मर्यादा, वीरता का गौरव और ज्ञान की गरिमा सब डुबा दी ! जी चाहता

है, इस अतृप्त हृदय में छुरा डालकर नचा दूँ। (ठहरकर)
परंतु विलास ! विलास ! तुझे क्या हो गया हो गया है ?
तुझे इससे क्या ? राज्य यदि करना है, तो इन छोटी-छोटी
बातों पर क्यों ध्यान देता है ? अपनी प्रतिभा से शासन
कर !

[विवेक आता है]

विवेक : आहा ! मंत्री और सेनापति महाशय, नमस्कार । परंतु
नहीं, जब मंत्री और सेनापति दोनों पद-पदार्थ एक आधार
में है तब राजा क्या कोई भिन्न वस्तु है। दोनों की
सम्मिलित शक्ति ही तो राजशक्ति है। अतएव हे राज-मंत्री
सेनापति ! हे दिक्काल पदार्थ ! हे जन्म, जीवन और
मृत्यु ! आपको नमस्कार !

विलास : (विवेक का हाथ पकड़ कर) बूढ़े, सच बता, तू पागल है या
कोई बना हुआ चतुर व्यक्ति ? यदि तुझे मार डालूँ।

विवेक : (हँसकर) अरे जिसे इतनी पहचान नहीं कि मैं पागल हूँ या
स्वस्थ, वह राज-कार्य क्या करेगा ?

विलास : अच्छा, तुम यहाँ क्या करने आये हो ?

विवेक : लड़ाई कभी नहीं देखी थी, बड़ी लालसा थी, उसी से—

विलास : तो तू ही वह व्यक्ति है, जिसने बहुत-से घायलों को पास
की अमराई में इकट्ठा कर रक्खा है और उनकी सेवा
करता है ?

विवेक : यह भी यदि अपराध हो, तो दण्ड दीजिये; नहीं तो समझ
लीजिये कि पागलपन है।

विलास : फिर विचार करूँगा, इस समय जाता हूँ।

विवेक : विचार करते जाइये, कलेजा फाड़ते जाइये, छुरे चलाते रहिये और विचार करते रहिये । विचार से न चूकिये, नहीं तो—

विलास : चुप—

विवेक : आहा, विचार और विवेक को कभी न छोड़िये, चाहे किसी के प्राण ले लीजिये, परन्तु विचार करके ।

[विलास सरोष चला जाता है, विवेक दूसरी ओर जाता है]

पट-परिवर्तन

४

(खेत में करुणा की कुटी संतोष अन्न की बालें एकत्र कर रहा है दुर्वृत्त आता है)

दुर्वृत्त : क्यों जी, इस खेत का तुम कितना कर देते हो ?

संतोष : कर ?

दुर्वृत्त : हाँ—रक्षा का कर !

संतोष : क्या इस मुक्त प्राकृतिक दान में भी किसी आपत्ति का डर है ? और क्या उन आपत्तियों से तुम किसी प्रकार इनकी रक्षा भी कर सकते हो ?

दुर्वृत्त : मुझे विवाद करने का समय नहीं है ।

संतोष : तब तो मुझे भी छुट्टी दीजिये. बहुत काम करना है ।

दुर्वृत्त : (क्रोध से देखता हुआ जाता है) अच्छा जाता हूँ ।

[करुणा आती है]

करुणा : भाई, तुम्हें काम करते बहुत विलम्ब हुआ । थक गये होंगे—चलो, कुछ खालो ।

संतोष : वहन ! इस गाँठ को भीतर धर दूँ, तो चलूँ ।

(परिश्रम से थका हुआ संतोष बोझ उठाता है । गिर पड़ता है । उसके पैर में चोट आती है । करुणा उसे उठाकर मीतर ले जाती है)

[एक ओर से वन-लक्ष्मी, दूसरी ओर से महत्त्वाकांक्षा का प्रवेश]

न-लक्ष्मी : देखो, तुम्हारी कर लेने की प्रवृत्ति ने अन्नों के सत्व को हल्का कर दिया, कृषक थकने लगे हैं । खेतों को सींचने की आवश्यकता हो गयी । उर्वरा पृथ्वी को भी कृत्रिम बनाया जाने लगा है ।

महत्त्वा- : विलास के लिए साधन कहाँ से आवेंगे ? यह जंगलीपन है ।
कांक्षा : अकर्मण्य होकर प्रकृति की पराधीनता क्यों भोग करें । जब शक्ति है, फिर अभाव क्यों रह जाय ?

न-लक्ष्मी : विलास की महत्त्वाकांक्षा ! तुम्हारा कहीं अन्त भी है ।
कब तक और कहाँ तक तुम मानव-जाति को झगड़ते देखना चाहतो हो ?

महत्त्वा- : प्रकृति अपनी सौमा क्यों नहीं बनाती । फूलों की कोमलता
कांक्षा : और उनका सौरभ एक ही प्रकार का रहने से भी तो काम चल जाता । फिर इतनी शिल्पकला, पंखड़ियों की विभिन्नता, रंग की सजावट क्यों ? तब हम अनन्त साधनों से अपने सुख को अधिकाधिक सम्पूर्ण क्यों न बनावें ।

न-लक्ष्मी : दौड़ाओ काल्पनिक महत्त्व के लिए । अतृप्ति के कशाघात से उत्तेजित करो । परन्तु प्रकृति के कोष से अनावश्यक व्यय करने का किसको अधिकार है ? यह ऋण है । इसे कभी भी कोई चुका सकेगा ? प्राकृतिक पदार्थों का अपव्यय करके भावी जनता को दरिद्र ही नहीं बनाया जा

रहा है, प्रत्युत उनकी वृत्ति का उद्गम ही बन्द कर देने का उपक्रम है। वे अपने पूर्वजों के इस ऋण को चुकाने के लिए भूखों मरेंगे।

महत्त्वा- : मरें—कौन निर्बलों का जीवन अच्छा समझता है ! देखो कांक्षा यहीं न, सन्तोष और करुणा। इनकी क्या अवस्था है।

वन-लक्ष्मी : इन पर तुम्हें दया नहीं; ये सच्चे हैं, सृष्टि की अमूल्य सम्पत्ति हैं। इनकी रक्षा करो।

महत्त्वा-

कांक्षा : (हँसती है) तुम सरल हो।

वन-लक्ष्मी : तुम कुटिलता में ही सौन्दर्य देखती हो।

महत्त्वा- : तरल जल की लहरें भी सरल नहीं। बाँकपना ही तो कांक्षा सौन्दर्य है। मैं उसी को मानती हूँ। करुणा और सन्तोष सृष्टि की दुर्बलताएँ हैं। मेरे पास उनके लिये सहानुभूति नहीं। (जाती है)

वन-लक्ष्मी : मेरा मृदुल कुटुम्ब ! मेरा कोमल शृंगार ! इस क्रूर महत्त्वाकांक्षा से झुलस रहा है। मैं उन्हें आलिंगित करूँगी। (खेत में बैठकर एक तृणकुसुम को देखती हुई) तू कुछ कह रहा है। तेरा कुछ सन्देश है। तेरी लघुता एक महान् रहस्य है। मैं तेरे साथ स्वर मिलाकर गाऊँगी।

(गाती है)

पृथ्वी की श्यामल पुलकों में सात्विक स्वेद-बिन्दु रंगीन।
नृत्य कर रहा हिलता हूँ मैं मलयानिल से हो स्वाधीन ॥
आँधी की बहिया बह जाती चिढ़ कर चल जाती चपला।
मैं यों ही हूँ, ये कोई भी मेरी हँसी न सकते छीन।
तितली अपना गिरा और भूला-सा पंख समझती है।

मुझे छोड़ देती, मेरा मकरन्द मुझी में रहता लीन ॥
 मधु सौरभ वाले फल-फूलों को लुट जाने का डर हो ।
 मैं झूला झूलती रही—हूँ बनी हुई अम्लान नवीन ॥
 व्यथित विश्व का राग-रक्त क्षत हूँ मुझको पहचानो तो ।
 सुधा-भरी चाँदनी सुनाती मुझको अपनी जीवन-बीन ॥

पट-परिवर्तन

५

[फूलों के द्वीप में एक नागरिक का घर]

पिता : वेटा, इतनी देर हुई, अभी तक सोते रहोगे, क्या आज खेतों में हल नहीं जायगा ?

लड़का : (आँख मलता हुआ) पहले एक प्याली मदिरा, फिर दूसरी बात, (अँगड़ाई लेकर) ओह बड़ी पीड़ा है ।

पिता : लड़के ! तुझे लज्जा नहीं आती ! मुझसे मदिरा माँगता है ?

लड़का : तो माँ से कह दो, दे जाय ।

माता : क्यों, आज भी सबेरा हो गया, अभी सुनार के यहाँ नहीं गये, हल पकड़े खड़े हो ? इससे तो अच्छा होता कि बैलों के बदले तुम्हीं इसमें जुतते । आज के उत्सव में चार स्त्रियों के सामने क्या पहनकर जाऊँगी ।

पिता : तो अच्छी बात है, सोने का गहना बैठकर खाना और चबाना मेरी सूखी हड्डियाँ ! लड़के को चौपट कर डाला । वह मुझसे मदिरा माँगता है, और तुम माँगती हो आभूषण ।

लड़का : (लेटा हुआ) तुम दोनों कैसे मूर्ख बकवादी हो । एक प्याली देने में इतनी देर ! इतना झंझट !

माता : तुझ-सा निखट्टू पति मेरे ही भाग्य में बदा था ! मैं यदि—

पिता : हाँ, हाँ कहो 'यदि' क्या ? यही न कि दूसरे की स्त्री होती, तो गहनों से लद जाती; परन्तु उसके साथ पापों से भी—

लड़का : देखो मुझे एक प्याला दे दो, और एक-एक तुम लोग—बस झगड़ा मिट जायगा । जो बैल होंगे, आप ही कुछ देर में खेत पर पहुँच जायेंगे ।

पिता : कुलांगार ! यह धृष्टता मुझसे सही न जायगी ।

लड़का : तो लो, मैं जाता हूँ । युद्ध में सैनिक बनकर आनन्द, कहेगा । तुन दोनों के नित्य के झगड़े से तो छुट्टी मिल जायगी । (उठता है)

माता : यह बाप है कि हत्यारा ? एक प्याला मदिरा नहीं दे देता । लड़के को मरने के लिये युद्ध में भेजना चाहता है । जान पड़ता है, इसने दूसरे बाल-बच्चे-स्त्री आदि बना लिये हैं; अब हम लोगों की आवश्यकता नहीं रही । एक को तो युद्ध में भेज दिया, दूसरे को भी—

पिता : वह तेरे लिए स्वर्ण लाने गया है । पिशाचिनी ! तू माँ है ? तुझे आभूषणों की इतनी आवश्यकता ?

लड़का : अच्छा, तो फिर जाता हूँ । (उठता और गिर पड़ता है, फिर माँ से कहता है) तू ही दे दे, इस खेतिहर गंवार को जाने दे ।

[पिता क्रोध से चला जाता है]

माता : अच्छा लो, पर फिर न माँगना । (देती है)

लड़का : (लेटा हुआ) नहीं, आँख खुलने तक नहीं। अभी एक नौद सो लेने दो।

माता : कैसा सीधा लड़का है। (हँसती है)

पट-परिवर्तन

६

[नवीन नगर की एक गली में नागरिकों का प्रवेश]

पहला ना० : सब ठीक है ! कामना ने यदि उन विचार-प्रार्थियों के कहने से कुछ भी इस नगर पर अत्याचार किया, तो हम लोग उसका प्रतिकार करेंगे।

दूसरा ना० : वह क्या ?

पहला ना० : विलास को यहाँ का राजा बनावेंगे और कामना को बन्दी।

दूसरा ना० : यहाँ तक ?

पहला ना० : बिना राजा के हम लोगों का काम नहीं चलेगा। यह तुच्छ स्त्री, कोमल हृदय की पुतली शासन का भेद क्या जानेगी।

दूसरा ना० : क्या और लोग भी इसके लिए प्रस्तुत हैं ?

पहला : सब ठीक है, अवसर की प्रतीक्षा है। चलो, आज दम्भदेव के यहाँ उत्सव है। तुम चलोगे कि नहीं ?

दूसरा : हाँ, हाँ चलूँगा। (दोनों जाते हैं)

[करुणा का सन्तोष को लिये हुये प्रवेश]

करुणा : किससे पूछूँ—भाई सन्तोष, थोड़ी देर यहीं बैठो, मैं क्रूर का घर पूछ आती हूँ। बड़ी पीड़ा होगी। आह—(सहलाती है)

सन्तोष : करुणे ! मैं तुम्हारे अनुरोध से यहाँ चला आया हूँ । मुझे तो इस वैद्य के नाम से भी निर्वेद होता है ।

करुणा : मेरे लिये भाई—मेरे लिये ! बैठो, मैं आती हूँ—(जाती है)

(एक नागरिक का प्रवेश)

नागरिक : (सन्तोष को देखकर) तुम कौन हो जी ?

सन्तोष : मनुष्य—और दुखी मनुष्य ।

नागरिक : तब यहाँ क्या है जो किसी के घर पर बिना पूछे बैठ गये ?

सन्तोष : यह भी अपराध है ? मैं पीड़ित हूँ, इसी से थोड़ा विश्राम करने के लिए बैठ गया हूँ ।

नागरिक : अभी नगर-रक्षक तुम्हें पकड़कर ले जायगा । क्योंकि तुमने मेरे अधिकार में हस्तक्षेप किया है । बिना मेरी आज्ञा लिये यहाँ बैठ गये । क्या यह कोई धर्मशाला है ?

संतोष : मैं तो प्रत्येक गृहस्थ के घर को धर्मशाला के रूप में देखाना चाहता हूँ, क्योंकि इसे पापशाला कहने में संकोच होता है ।

नागरिक : देखो इस दुष्ट की । अपराध भी करता है और गालियाँ भी देता है । उठ जा यहाँ से, नहीं तो धक्के खायगा !

संतोष : हे पिता ! तुम्हारी सन्तान इतनी बँट गयी है ।

नागरिक : क्या हिस्सा भी लेगा ? उठ-उठ—चल—

संतोष : भाई, मैं बिना किसी के अवलम्ब के चल नहीं सकता । मेरी बहन आती है मैं चला जाऊँगा ।

नागरिक : क्या तेरी बहन !

संतोष : हाँ—

नागरिक : (स्वगत) आने दो, देखा जायगा ।

[दौड़ती हुई करुणा का प्रवेश, पीछे मद्यपं दुर्वृत्त]

दुर्वृत्त : ठहरो सुन्दरी ! मुझे विश्वास है कि तुमको न्यायालय की शरण लेनी पड़ेगी—मैं व्यवस्था बतलाऊँगा, तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम सुनो तो ! हाँ—क्या अभियोग है ? किसी ने तुम्हें—ऐं !

करुणा : (भयभीत) भाई सन्तोष ! देखो यह मद्यप !

दुर्वृत्त : चलो, तुम्हें भी पिलाऊँगा । बिना इसके न्याय की बारीकियाँ नहीं सूझती—हाँ, तो फिर एक चुम्बन भी लिया—यही न !

करुणा : नीच, दुराचारी !

संतोष : क्यों नागरिक ! यही तुम्हारा सभ्य व्यवहार है ?

दुर्वृत्त : अनधिकार चेष्टा—मूर्ख ! तू भी न्यायालय से दण्ड पावेगा—तुम साक्षी रहना नागरिक !

नागरिक : (करुणा की ओर देखता हुआ) सुन्दर है ! हाँ—हाँ, यह तो अनधिकार चेष्टा प्रारम्भ से ही कर रहा है; बिना मुझसे पूछे यहाँ बैठ गया और बात भी छीनता है ।

संतोष : मैं चिकित्सा के लिए यहाँ आया हूँ । क्यों मुझे तुम लोग तंग कर रहे हो—चलो करुणा, हम लोग चलें ।

दुर्वृत्त : वाह ! चलो चलें ! ए—तुम्हें परिचय देना होगा, तुम असभ्य बर्बर यहाँ किसी बुरी इच्छा से आये होगे । नागरिक ! बुलाओ शान्तिरक्षक को ।

संतोष : (हँसकर) शान्ति तुम्हारे घर कहीं है भी जो तुम उसकी रक्षा करोगे ? बाबा, हम लोग जाते हैं जाने दो ।

दुर्वृत्त : परिचय देना होगा तब—

करुणा : परिचय देने में कोई आपत्ति नहीं है। मैं मृत शान्तिदेव की बहन हूँ।

[दुर्वृत्त आँख फाड़ कर देखता है]

नागरिक : तब यह तुम्हारा भाई कैसे ? इसमें कुछ रहस्य है।

दुर्वृत्त : तुम क्या जानो, चुप रहो (करुणा से) हाँ, तुम्हारा तो बड़ा भारी अभियोग है, न्यायालय अवश्य तुम्हें सहायता देगा। क्यों, तुमने शान्तिदेव का धन कुछ पाया ? अकेली लालसा उसे नहीं भोग सकती। तुम्हारा भी उसमें कुछ अंश है।

नागरिक : हाँ यह तो ठीक कहा—

करुणा : मुझे कुछ न चाहिये। मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

दुर्वृत्त : नहीं, मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं हो सकता। तुम्हारा उचित प्राप्य, न्यायालय की सहायता से दिलाना मेरा कर्त्तव्य है। तुम व्यवहार लिखाओ।

सन्तोष : हम लोगों को कुछ न चाहिये।

[क्रूर का प्रवेश]

दुर्वृत्त : आओ नागरिक क्रूर ! यह तुमसे चिकित्सा कराने बड़ी दूर से आया है।

क्रूर : (सन्तोष को देखता हुआ) यह ! अरे इसकी तो टाँग सड़ गयी है, भयानक रोग है, इसको काटकर अलग कर देना होगा।

सन्तोष : हे देव ! यह क्या लीला है ! यह सब पिशाच हैं कि मनुष्य ! मुझे चिकित्सा न चाहिये, मुझे जाने दो।

नागरिक : नगर का दुर्नाम होगा, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हें चिकित्सा करानी होगी। मैं शस्त्र ले आता हूँ। (जाता है)

(प्रमदा का सहेलियों के साथ नाचती हुई आना, दूसरी ओर से दम्भ का अपने दल के साथ प्रवेश)

दम्भ : क्यों दुर्वृत्त ! क्रूर ! तुम लोग अभी उत्सव में नहीं मिले।

क्रूर : कुछ कर्त्तव्य है आचार्य ! यह पीड़ित है, इसकी चिकित्सा—

दम्भ : (सन्तोष को देखकर) छिः छिः। पवित्र देवकार्य के समय तुम अस्पृश्य को छुओगे ? (सन्तोष से) जा रे, भाग !

दुर्वृत्त : (धीरे से) यह शान्तिदेव की बहन है। उसके पास अपार धन था। इसे न्यायालय में ले चलूंगा और क्रूर को भी इसकी चिकित्सा से कुछ मिलेगा। हम दोनों का लाभ है।

दम्भ : यह सब कल होगा। (नागरिक से) यह तुम्हारा घर है न ?

नागरिक : हाँ।

दम्भ : आज इसे तुम अपने यहाँ रक्खो। कल इसकी चिकित्सा होगी। और प्रमदा ! इस सुन्दरी को देवदासियों के दल में सम्मिलित कर लो। इसके लिए न्यायालय का प्रबन्ध कल किया जायगा। आज पवित्र दिन है, केवल उत्सव होना चाहिये।

(नागरिक सन्तोष को पकड़ता है, और प्रमदा एक मद्यप के साथ करुणा को खींचती है, विवेक दौड़कर आता है)

विवेक : कौन इस पिशाच-लीला का नायक है ?

[सब सहम जाते हैं। विवेक सबसे छुड़ाकर दोनों को लेकर हटता है]

दम्भ : तू कौन इस उत्सव में धूमकेतु-सा आ गया ? छोड़कर चला जा, नहीं तो तुझे पृथ्वी के नीचे गड़वा दूँगा ।

विवेक : मैं चला जाऊँगा । फूल के समान आया हूँ, सुगन्ध के सदृश जाऊँगा । तू बच, देख उधर । (सब उसे पकड़ने को चंचल होते हैं; विवेक दोनों को लिये हटता है । झूकम्प से नगर का वह भाग उलट-पलट हो जाता है)

पट-परिवर्तन

७

[आक्रांत देश का एक गांव, एक बालिका और विवेक]

बालिका : आज तक तो हमारे ऊपर अत्याचार होता रहा है, परन्तु कोई इतनी मित्रता नहीं दिखलाने आया । तू आज छल करने आया है ।

विवेक : नहीं माँ, जा बड़े-बूढ़ों को बुला ला ।

बालिका : परन्तु—

विवेक : हाय रे पाप ! इन निरीह बालकों में भी विश्वास का अभाव हो गया है । विश्वास करो माँ, बुला लो ।

[बालिका जाती है, चार वृद्ध और युवक आते हैं]

विवेक : मैं उसी शापित देशका हूँ, जिसमें सोने की ज्वाला धधक उठी है, मदिरा की वन्या बाढ़ पर है । क्या मुझ पर विश्वास करोगे ?

युवक : कहो, तुम्हारा प्रयोजन सुन लें ।

विवेक : हमारे और तुम्हारे देश की सीमा में एक नया राज्य स्थापित हो गया है । वह हमारे देश के विद्रोहियों का एक

घृणित संगठन है। उसने अत्याचार का ठेका ले लिया है।
उससे क्या हम तुम दोनों बचना चाहते हैं ?

युवक : परन्तु उपाय क्या है ?

विवेक : हम लोगों को भाई समझकर मित्र-भाव की स्थापना करो,
और इनके अत्याचारों से रक्षा करो। हम परस्पर दूसरे के
सहायक हों।

युवक : किस प्रकार ?

विवेक : आज न्यायालय में विचार होने वाला है, और तुम्हारे देश
के जो दो बन्दी हुए हैं, उन्हें दण्ड मिलेगा। हम लोगों में से
बहुतेरे उसके विरुद्ध हैं, यदि तुम लोग भी हमारी सहायता
करो, तो इस भीषण आतंक से सबकी रक्षा हो।

युवक : हम लोग ठीक समय पर पहुँचेंगे। परन्तु वहाँ तक जाने
कैसे पावेंगे ?

विवेक : हमारी सेवा से जितने आहत अच्छे हो चुके हैं उन्हीं लोगों
के दल के साथ। और, इस अच्छे कर्म के लिए बहुत
सहायक मिलेंगे।

युवक : अच्छा, तो हम जाते हैं।

विवेक : तुम्हारा कल्याण हो।

(युवक और उसके साथी जाते हैं, दूसरी ओर से वही
बालिका दौड़तो हुई आती है, पीछे दो उन्मत्त मद्यप हैं)

बालिका : दोहाई है, बचाओ ! बचाओ !

मद्यप- : सुन्दरी, इतनी दौड़-धूप करने पर तो प्रेम का आनन्द नहीं
सैनिक रहता। माना कि यह भी एक भाव है; पर वह मुझे रुचि-
कर नहीं। सुन तो लो—(पकड़ता है)

बालिका : अरे, तुम क्या मनुष्यता को भी मदिरा के साथ धूलकर पी गये हो !

सैनिक : मदिरा के नाम से वही तो पीता हूँ !

विवेक : (आगे बढ़कर) क्यों, तुम वीर सैनिक हो न ?

सैनिक : क्या इसमें भी सन्देह है ?

विवेक : कायर—छोड़ दे नहीं तो दिखा दूँगा कि इन सूखी हड्डियों में कितना बल है !

सैनिक : जा पागल ! तू क्यों मरना चाहता है ?

विवेक : दूसरे की रक्षा में, पाप का विरोध और परोपकार करने में, प्राण तक दे देने का साहस किस भाग्यवान् को होता है ? नीच ! आ, देखूँ तो !

(सैनिक तलवार से प्रहार करने की उद्यत होता है, विवेक सामने तन कर खड़ा होता और उसकी कलाई पकड़ लेता है)

सैनिक : अब छोड़ दो, हाथ टूटता है ।

विवेक : (छोड़कर) इसी बल पर इतना अभिमान ! जा अब सीधा हो जा । देश का कलंक धोने में हाथ बँटा, कल परीक्षा होगी ।

सैनिक : पिता ! क्षमा करो; जो आज्ञा होगी, मैं और मेरे साथी, सब वही करेंगे ।

विवेक : स्मरण रखना ।

(दोनों शिर झुकाकर जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

८

[सैनिक न्यायालय रानी और सैनिक लोग बैठे हैं एक ओर से विलास, दूसरी ओर से लालसा का प्रवेश]

विलास : रानी, यह बन्दिनी स्त्री बड़ी भयानक है। हमारी सेना के समाचार लेने आयी थी ! इसको दण्ड देना चाहिए।

लालसा : और एक व्यक्ति मेरे मण्डप में भी है। वह भी कुछ ऐसा ही जान पड़ता है। दोनों का साथ ही विचार हो।

[रानी के संकेत करने पर चार सैनिक जाते हैं और दोनों को ले आते हैं शत्रु-सैनिक और स्त्री दोनों एक दूसरे को देख चीत्कार करते हैं]

विलास : यह स्त्री प्राण-दण्ड के योग्य हैं। इसने सेना का सब भेद जान लिया था। यदि यह पकड़ न ली जाती, तो उस दिन के युद्ध में हम लोगों को पराजित होना पड़ता।

लालसा : और सीमा पर मैं इस पुरुष से मिली। यदि मैं इसे भुलावा देकर न ले आती, तो यह मेरा बड़ा अपमान करता, जो इस जाति के लिये कलंक की बात होती।

रानी : विलास !

विलास : कुछ नहीं रानी, इन्हें प्राणदण्ड !

लालसा : इनसे पूछने की क्या आवश्यकता है ? हम लोगों का कहना ही क्या इसके लिए यथेष्ट प्रमाण नहीं है ?

सब सैनिक : हाँ, हाँ, सेनापति का अनुरोध अवश्य माना जाय।

कामना : तब मुझे कुछ कहना नहीं है।

विलास : (सैनिकों से) दोनों को इसी वृक्ष से बाँध दो, और तीर मारो।

स्त्री : क्यों शत्रु-सेनापति ! स्त्री पर अत्याचार न कर पाने पर उसका प्राण लेना ही न्याय है ? परन्तु प्राण तुम ले सकते हो, मेरा अमूल्य धन नहीं ।

शत्रु-सैनिक : सुन्दरी लालसा, तुम स्त्री हो या पिशाचिनी ?

लालसा : जा, जा, मर । (दोनों को बाँधकर तीर मारे जाते हैं)

[कई प्रार्थियों का प्रवेश]

सैनिक : रानी, द्वेष ने मुझे सोते में छुरा मार कर घायल किया है न्याय कीजिये ।

दूसरा : प्रमदा मेरे आभूषणों की पेट्टी लेकर दुर्वृत्त के साथ भाग गई । उससे मेरे आभूषण दिला दिये जायें ।

तीसरा : रानी, मैं बड़ा दुखी हूँ । मेरा मदिरा का पात्र किसी ने चुरा लिया । मैं बड़े कष्ट से रात बिताता हूँ ।

चौथा : नवीना मेरी विश्वासपात्र प्रेमिका बन कर गहने के लोभ से स्वर्णभूति के साथ जाने के लिए तैयार है उसे समझा दिया जाय, अन्यथा मैं आत्महत्या करूँगा ।

पाँचवाँ : रानी, मेरा लड़का सब धन बेच कर मदिरा पी जाता है, उससे मेरा सम्बन्ध छुड़ा दिया जाय ।

एकस्त्री : मुझे विश्वास देकर, कौमार-भङ्ग करके अब यह मद्यप मुझसे व्याह नहीं करता ।

एक दूत : (प्रवेश करके) जिस नवीन नगर की प्रतिष्ठा कुछ लोगों ने की थी, उसमें बहुत से अपराधी जाकर छिपे थे, वह नगर भूकम्प से भूगर्भ में चला गया ।

रानी : ठहरो । मुझे पागल न बनाओ । अपराधों की आंधी ! चारों ओर कुकर्म ! ओह !

[एक आठ वर्ष का बालक दौड़ा आता और दण्डितों के शवों पर गिर पड़ता है। कामना उठकर खड़ी हो जाती है]

कामना : बालक, तुम कौन हो ?

बालक : (रोता हुआ) मेरी माँ, मेरे पिता—

कामना : क्यों विलास, यह क्या हुआ।

लालसा : ठीक हुआ।

कामना : लालसा, चुप रहो। तुम न मंत्री हो, और न सेनापति।

लालसा : हाँ, मैं कुछ नहीं हूँ—तो फिर—

विलास : उन्हें उपयुक्त दण्ड दिया गया।

कामना : यदि राजकीय शासन का अर्थ हत्या और अत्याचार है, तो मैं व्यर्थ रानी बनना नहीं चाहती। मेरी प्रजा इस बर्बरता से जितना शीघ्र छुट्टी पावे, उतना ही अच्छा। (मुकुट उतारती हुई) यह लो, इस पाप-चिह्न का बौझ अब मैं नहीं वहन कर सकती। यथेष्ट हुआ। प्यारे देशवासियो, लौट चलो, इस इन्द्रजाल की भयानकता से भागो। मदिरा से सिंचे हुये चमकीले स्वर्ण-वृक्ष की छाया से भागो।

[सिंहासन से हटती हैं]

[विवेक का उन्मत्त भाव से प्रवेश, कामना बालक को गोद में लेती है]

विवेक : बहुत दिन हुए, जब मैंने कहा था कि 'भागो-भागो'। तब तुम्हीं सब लोगों ने कहा था कि 'पागल हैं'; और मैं पागल बन गया। (देखकर) कामना, आहा मेरी पगली लड़की! आ, मेरी गोद में आ—चल, हम लोग वृक्षों की शीतल छाया में लौट चलें।

[कामना दौड़कर विवेक से लिपट जाती है]

विनोद : मदिरा और स्वर्ण के द्वारा हम लोगों में नवीन अपराधों की सृष्टि हुई, और हुई एक महान् माया-स्तूप की रचना । हमारे अपराधों ने राजतन्त्र की अवतारणा की । पिता की सदिच्छा, माता का स्नेह, शील का अनुरोध हम लोगों ने नहीं माना । तब अवश्य दण्ड के सामने सिर झुकाना पड़ेगा । कामना, हम सब तुम्हारे साथ हैं ।

विलास : सज्जनो ! सैनिको ! देश दरिद्र है, भूखा है । क्या तुम लोग इन देशद्रोहियों के पीछे चलोगे ? यह भी क्या खेल है ?

विवेक : खेल था, और खेल ही रहेगा । रोककर खेलो चाहे हँसकर । इस विराट् विश्व और विश्वात्मा की अभिन्नता, पिता और पुत्र, ईश्वर और सृष्टि, सब को एक में मिलाकर खेलने की सुखद क्रीड़ा भूल जाती है; होने लगता है विषमता का विषमय द्वन्द्व । तब सिवा हाहाकार और रुदन के क्या फैलेगा ? हँसने का काम भूल गये । पशुता का आतंक हो गया । मनुष्यता की रक्षा के लिये, पाशवी वृत्तियों का दमन करने के लिए राज्य की अवतारणा हो गयी; परन्तु उसकी आड़ में दुर्दमनीय नवीन अपराधों की सृष्टि हुई । इसका उद्देश्य तब सफल होगा, जब वह अपना दायित्व कम करेगी—जनता को, व्यक्ति को, आत्मसंयम और आत्मशासन सिखाकर विश्राम लेगी । जब अपराधों की मात्रा घटेगी और क्रमशः समूल नष्ट होगी, तब संघर्षमय शासन स्वयं तिरोहित होगा । आत्मप्रतारको ! उस दिन की प्रतीक्षा में कठोर तपस्या करनी होगी, जिस दिन ईश्वर और मनुष्य, राजा और प्रजा, शासितों और शासकों का भेद विलीन होकर विराट्-विश्व, जाति और देश के

Digitization by Arva Samaj Charitable Foundation
वर्णों से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन-क्रीड़ा का अभिनय
करेगा।

द : आओ, हम सब उस मधुर-मिलन के योग्य हों। उस
अभिनय का मंगल पाठ पढ़ें।

[अपना स्वर्णपट्ट और आभूषण उतार कर फेंकता है,
लीला भी उसका अनुकरण करती है]

लीला : जितने भूले-भटके होंगे, वे इन्हीं पागलों के पीछे चलेंगे।
हम अपने फूलों के द्वीप से कांटों को चुनकर निकाल बाहर
करेंगे।

[बहुत-से लोग अपने स्वर्ण-आभूषण और मदिरा के पात्र
तोड़ते हैं। विलास और लालसा आश्चर्य के भाव से
देखते हैं]

विलास : सैनिको, तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम वीर हो। क्या तुम
इन्हीं का-सा दीन और निरीह जीवन बिताओगे? क्या
फिर उसी दुःखपूर्ण देश में जाओगे जहाँ न तो सोने के
पानपात्र हैं, और न माणिक के रंग की मदिरा?

कुछ लोग : हम लोग यहीं नगर बसाकर रहेंगे।

एक : और तुम हमारे राजा बनो।

[वह गिरा हुआ मुकुट उसे पहनाता है, लालसा भी रानी
का स्थान ग्रहण करने के लिए जागे बढ़ती है, 'ठहरो-
ठहरो कहते हुए दोनों ओर से सैनिकों के साथ सन्तोष का
प्रवेश]

विवेक : सन्तोष ! तुमने बहुत विलम्ब किया।

आगन्तुक : क्या ! यह हत्या ? तुम हत्या करके भी यह साहस करते
हो कि हम लोग तुम्हें अपना सर्वस्व मानें। यह ठीक है कि
हम लोगों को बिधि-निषेधात्मक एक सर्वमान्य सत्ता की
अव आवश्यकता हो गयी है; परन्तु तुम कदापि इसके

योग्य नहीं हो। सोने से लदी हुई लालसा रानी ! और
मदिरा से उन्मत्त विलास राजा ! आश्चर्य !!!

[विलास के साथी सैनिक भी स्वर्ण और अस्त्र रख देते हैं]

विलास : तब लालसा ?

लालसा : अनन्त समुद्र में, काल के काले परदे में, कहीं तो स्थान
मिलेगा--चलो विलास !

[दोनों जाते हैं]

कामना : मेरे सन्तोष ! प्रिय सन्तोष

संतोष : मेरी मधुर कामना—(कामना का हाथ पकड़ लेता है)

[परिवर्तित दृश्य, समुद्र में नौका पर विलास और
लालसा, सब नागरिक उस पर स्वर्ण फेंकते हैं, न
डगमगाती है लालसा का क्रन्दन—‘सोने से नाव डूबी, उ
नहीं बस’, तुमुल तरंग, परिवर्तित दृश्य में अन्धका
दूसरी ओर आलोक, फूलों की वर्षा]

[समवेत स्वर से गान]

खेल लो नाथ, विश्व का खेल ।

राजा बन कर अलग न बैठो, बनो नहीं अनमेल ॥

वही भाव फिर लेगी जनता, भूल जायगी सारी समता ।

कहाँ रही प्यारी मानबता, बढ़ी फूट की बेल ॥

रुदन, दुःख, तम-निशा, निराशा, इन द्वंद्वों का मिटे तमाशा ।

स्मित आनन्द उषा औ’ आशा, एक रहें कर मेल ॥

हम सब हैं हो चुके तुम्हारे, तुम भी अपने होकर प्यारे ।

आओ, बैठो साथ हमारे, मिलकर खेलें खेल ॥

खेल लो नाथ विश्व का खेल !

यवनिका पतन



